प्रकाशक—
श्री भजासिशङ्कर दीक्षित,
ढोंग-विरोधी-पुस्तकमाला-कार्यालय,
मु० बिछलखा, पो० रामनगर,
ज़िला—बाराबंकी (यू०पी०)

मूल्य—

नक्द	...	...	॥)
मनिऑर्डर से	...	...	॥=)
रजिस्ट्री से पुस्तक मँगाना चाहें तो		...	१-)

टिकिट भेजना तथा व्ही० पी० माँगना मना है !

मुद्रक—
पं० मन्नालाल तिवारी,
हरीकृष्ण-कार्यालय, शुक्ला-प्रिंटिंग-प्रेस,
६६, लाटूश-रोड,
लखनऊ.

अत्यन्त-नम्र प्रार्थना !

मैंने, इस पुस्तक को लिखते समय यह समझ लिया था, कि मुझे कटु तथा मृदु-आलोचना, गाली और प्रशंसा आदि सभी बातें सहन करनी पड़ेंगी। लेकिन, इस पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ भी बोलने, लिखने या उत्तर देनेवाले सज्जनों से मैं प्रार्थना करूँगा, कि वे मेरी निम्न-बातों पर ध्यान देने की कृपा अवश्य करें।

(१) कोई राय क़ायम करने से पहले ध्यान तथा निष्पक्ष-भावना से पूरी-पुस्तक पढ़ जाइये।

(२) जो कुछ राय क़ायम कीजिये, उसकी सूचना या आलोचनावाले अंक की एक प्रति मेरे पास भेजने की कृपा कीजिये, ताकि मैं भी उस पर विचार कर सकूँ। मेरी जानकारी से बाहर की आलोचना या उत्तर लगभग निरर्थक ही होगा।

(३) मेरे सिद्धान्त के पक्ष या विपक्ष में जो लेख पत्रों में प्रकाशित हों, उनकी प्रति मुझे भेजने का नम्र-अनुरोध, माननीय पत्र-सम्पादकों से है।

उपरोक्त प्रार्थनाओं पर ध्यान देने की स्थिति में, शायद मैं सभी सभ्य-व्यक्तियों के लेखों पर विचार करने में समर्थ हो सकूँ। मैं पुनः यही कहूँगा, कि मेरी जानकारी से बाहर का विरोध या समर्थन, हमारे लिये सर्वथा निरर्थक होगा।

विनम्र—

भजामिशङ्कर दीक्षित.

विषय-सूची

प्राक्कथन.

कई वर्षों से, धर्म की ओट में होनेवाले अत्याचारों को देख-देखकर तथा हमारे देश की अपरिवर्तनशीलता अनुभव कर-करके, मेरा हृदय भीतर ही भीतर जलता था। मैं, धर्माचार्यों के अत्याचार तथा धर्ममूढ़ता से अपने देश के छुटकारे के उपाय सोचता रहता था। किन्तु, आजतक धर्म का कोई भी ऐसा सुधार मेरी समझ में न आया, जिसके होजाने पर इस महारोग से छुट्टी मिल सके। जब यह स्थिति जान पड़ी, तब सुधार का विचार छोड़कर, मैंने धर्म ही को कसौटी पर जाँचना शुरू किया। तर्क करता-करता, अन्त में मैं इस निर्णय पर पहुँचा, कि वास्तव में इस रोग के न सुधरने का कारण यही है, कि यह सब केवल भ्रम है, वास्तविक-वस्तु नहीं। रोग की दवा होसकती है, ढोंग की नहीं।

ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, परलोक, भूत-प्रेत और देवी-देवता आदि सभी वस्तुएँ काल्पनिक हैं, इसी कारण संसार में इतना ज़बर्दस्त-मत-भेद प्रचलित है। यदि ये वस्तुएँ वास्तव में होतीं, तो अबतक इनके स्वरूप का निर्णय होजाता, झगड़े की बात न रहती।

लेकिन नहीं, इस ढोंग का कभी निर्णय नहीं हुआ, न आगे ही होसकता है। जब यह स्थिति है, तो कोई कारण नहीं जान पड़ता, कि आख़िर क्यों न इस ढोंग के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया जावे?

एक समय वह था, जब लोगों ने अपना प्रभाव जमाये रहने की इच्छा से इन सब मिथ्या-ढोंगों की कल्पना की थी। उसके बाद, एक

समय वह हुआ, जब लोगों को धर्म के नाम पर सदाचारपूर्वक जीवन व्यतीत करवाने की इच्छा से इन ढोंगों का समर्थन किया गया। तत्पश्चात् एक युग वह आया, जब अपने-अपने पन्थ में लोगों को फँसा रखने और अपना स्वार्थ साधने एवं अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने की इच्छा से, ढोंगी-धर्माचार्यों ने इन सब कल्पनाओं को सीमातीत-महत्व दिया। इसी युग से धार्मिक-झगड़ों की वृद्धि हुई और उस पशुता का जन्म हुआ, जिसका संक्षिप्त-आभास इस पुस्तक में मिलेगा। इन सब ढोंगों का युग अब बीत चुका है विज्ञान की उन्नति और अन्तर्राष्ट्रीय-संघर्ष के कारण, मनुष्य-जाति दिन-दिन विवेकप्रधान होती जाती है, अन्धविश्वास यानी आँखें बन्द करके किसी बात को मानने की रीति, संसार से विदा हो रही है। ऐसे युग में, हमलोगों का क्या कर्त्तव्य है ?

जिस वस्तु का समय व्यतीत होजाता है, वह मृत समझी जाती है। ऐसी मृत-वस्तु के शव को लिये-लिये घूमनेवाले को कोई भी बुद्धिमान् नहीं कह सकता। हमारे लिये, अब केवल यही कार्य अक़्ल-मन्दी का है, कि हम इन सारे ही पारलौकिक-पचड़ों को सम्मानपूर्वक समुद्र में विसर्जन करके, समय की गति के साथ-साथ उन्नति करें। यदि, हमने ऐसा नहीं किया और अपना वही मल्हार गाते रहे, तो एक दिन समय की गति की वह ज़बरदस्त-ठेस हमारी पीठ में लगेगी, कि हम एक तरफ़ औंधे-मुँह गिरेंगे तथा हमारा वह परम-प्रिय शव न-जाने कहाँ लुढ़ककर गिरे। जब यह निश्चित है, तो इस तरह ठोकर खाकर, अपमानपूर्वक उस ढोंग को छोड़ने की अपेक्षा क्या प्रसन्नता से छोड़ देना एवं अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देना कुछ बुरा है ? कदापि नहीं।

आमतौर पर लोगों की धारणा है, कि धर्म की कल्पना, मनुष्यता के लिये की गई थी। लेकिन अनुभव बतलाता है, कि धर्म मनुष्यता

के साथ नहीं चला, बल्कि वह मनुष्यता को अपने विकृत-स्वरूप के पीछे बड़ी-दूर तक खींच लेगया। इसका मतलब यह है, कि मनुष्यता को धर्म ने मिट्टी में मिला दिया! जिस धर्म के कारण हमारी यह स्थिति होगई, उसकी रक्षा क्या अधिक-दिन होसकती है? कदापि नहीं। जब उसे एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा, तो क्यों न आज ही बुद्धिमानी से उसका त्याग कर दिया जावे? अस्तु।

प्रस्तुत-पुस्तक लिखने का कार्य, मेरी अपेक्षा मेरे कई-मित्र बहुत-अच्छी तरह कर सकते थे। मैंने, कई-बार उनसे अनुरोध भी किया, लेकिन वे सदैव अपने कानों पर हाथ धरकर यही कहते रहे, कि भारतवर्ष में ढोंगियों का एक ऐसा संगठन है, जो इस नग्न-सत्य को सहन न करेगा और गालियों की वह करारी-बौछार शुरू कर देगा, जिसे हम न सहन कर सकेंगे। और है भी यही बात। जब मैंने किसी को इसके लिये तयार होते न देखा, तब विवश होकर स्वयं ही यह पुस्तक लिखी। मेरा यह विश्वास है, कि जब इस प्रकार के साहित्य का प्रकाशन शुरू होजावेगा, तब लोगों के गाली देनेवाले हौसले निकल जावेंगे। कुछ समय के बाद, जब लोगों की गालीप्रदायिका-शक्ति कुछ क्षीण होजावेगी, तब बड़े-बड़े विद्वान्‌लोग इस विषय पर पुस्तकें लिखने का साहस कर सकेंगे। सारांश यह, कि जिस तरह किसी युद्ध के शुरू होने से पूर्व, बिगुलची अपने बिगुल को बजाता है, ठीक उसी तरह मैंने इस पुस्तक को प्रकाशित किया है। लोग देखेंगे, कि निकट-भविष्य में ही इस तरह की सैकड़ों-पुस्तकें साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होंगी और ढोंगियों के क़िलों पर गोलाबारी का कार्य करेंगी।

सचमुच ही, भारतवर्ष में एक ऐसी श्रेणी है, जो स्वार्थ या अज्ञान-वश, प्रत्येक ऐसे कार्य का विरोध करती है, जिससे देश की उन्नति होसके। वही श्रेणी समुद्र-यात्रा का निषेध करती है, वही श्रेणी 'न पठेत् यावनी भाषां' का उपदेश देती है, वही श्रेणी अंग्रेज़ी पढ़े-

लिखों को भ्रष्ट मानती है और वही श्रेणी सुधारकों को गालियाँ देती है। इस श्रेणी ने, समाज में अपना ढोंग फैलाकर, उसे अज्ञान में डाल रक्खा है। इस श्रेणी का प्रभाव नष्ट करने पर ही देश की उन्नति सम्भव है और यह तभी होसकता है, जब सभी पढ़े-लिखे युवक, मानापमान का ध्यान छोड़कर मैदान में उतर आवें एवं सारे देश में, ढोंगों के विरुद्ध विद्रोह की भावना उत्पन्न करें !

हम फिर वही बात कहेंगे, कि प्रमाण के अभाव में ये सारे पारलौकिक-ढोंग झूठ हैं और हमारा सर्वनाश इन्हीं ढोंगों में फँसे होने के कारण हुआ है ! यदि हमें अपनी उन्नति अभीष्ट हो, तो जितना शीघ्र सम्भव हो, इन सबका परित्याग करना तथा करवाना चाहिये !

यहाँ, यह कह देना भी आवश्यक है, कि इस पुस्तक का लेखक कोई बड़ा साहित्यज्ञ नहीं है। साथ ही, यह उस वज्र-देहात में बैठकर लिखी गई है, जहाँ लाइब्रेरियों से कोई सहायता नहीं ली जासकती थी। सहायता मिल भी नहीं सकती थी, कारण कि इस विषय की पुस्तकों का भारत में अभाव-सा है। सम्भव है, कुछ साहित्य हो भी, किन्तु वह हमारी दृष्टि से बाहर है। इस पुस्तक में अनेक साहित्यिक-दोष होसकते हैं। इसलिये विद्वानों से हमारी प्रार्थना है, कि इसके साहित्यिक-दोषों पर ध्यान न देकर, इसके मूल-विषय पर ही अधिक-से-अधिक ध्यान दें। इति।

विछलखा,
३१ अगस्त १९३३ ई०

विनम्र—
भजामिशङ्कर दीक्षित.

प्रथम-अध्याय

आज, हज़ारों-वर्षों से हमारे नेत्रों पर अन्धविश्वास का पर्दा पड़ा है। बिना तर्क या विचार किये, आँखें बन्द करके वंशपरम्परागत-संस्कारों के कारण हम ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, परलोक, भूत-प्रेत तथा देवी-देवता आदि का अस्तित्व मानते चले आते हैं। ये सभी वस्तुएँ अदृश्य मानी जाती हैं, कारण कि एक कल्पना से अधिक इनका कोई मूल्य नहीं है। धर्म-शास्त्रों के लम्बे-चौड़े गपोड़ों के अतिरिक्त, इनके लिये अन्य कोई प्रमाण भी नहीं मिलता। यदि ज़रा भी तर्क-बुद्धि से काम लिया जावे, तो इन सब ढोंगों की पोल खुल जाती है। तर्क, ज्ञान का साथी है और अन्धविश्वास अज्ञान का ! जहाँ तर्क नहीं है, वहाँ अज्ञान है ! संसार के सभी अज्ञानों की दवा तर्क है, तर्क करते ही इस पारलौकिक-अज्ञान का पर्दा फट जाता है !

ईश्वर क्या है?

प्राचीन-काल की एक कहानी मशहूर है। किसी गाँव के मनुष्य, अत्यन्त भोले-भाले थे। उन्हीं में, एक सज्जन 'लालबुझक्कड़' के नाम से मशहूर थे। गाँव के लोगों की बुद्धि, जब किसी बात में काम नहीं देती, तब 'लालबुझक्कड़जी' उस समस्या को सुलझाने के लिये बुलाये जाते थे। लालबुझक्कड़, जो बात कह देते, उसे सारा गाँव आँखें बन्द करके मान लेता था। इसका एक साधारण-कारण जहाँ गाँववालों की बुद्धिन्यूनता थी, वहीं सबसे जबरदस्त-कारण उनकी लालबुझक्कड़जी के प्रति अपार-श्रद्धा थी।

श्रद्धा, एक अच्छी-चीज है, लेकिन तर्क से शून्य नहीं। तर्क के पश्चात् होनेवाली श्रद्धा सत्य के समीप ले जाती है और बिना तर्क की श्रद्धा अन्धविश्वास उत्पन्न करती है। जिन्हें, केवल श्रद्धा ही श्रद्धा है, वे निश्चय ही असत्य का पोषण और अपने अज्ञान की वृद्धि करेंगे। अस्तु।

यही दशा, उस गाँव के लोगों की भी हुई। वे, लालबुझक्कड़ की बातों पर तर्क किये बिना ही उन्हें सत्य समझ लेते थे। इसी कारण, उन्हें कभी सत्य-बात नहीं मालूम हुई। लालबुझक्कड़जी भी अपना रौब गाँठे रहने के लिये कुछ-न-कुछ अर्थ बतला ही दिया करते थे। एक बार, उस गाँव के किनारे होकर रात के समय एक हाथी निकल गया। सबेरे, लोगों ने उठकर, उसके पैरों के चिन्ह धूल पर देखे। उन लोगों ने,

कभी हाथी देखा न था, अतः वे समझ न सके, कि ये किस जानवर के पैरों के चिन्ह हैं। बहुत-से लोग इकट्ठे होगये, लेकिन कोई भी उस जटिल-प्रश्न को न हल कर सका। अन्त में, लालबुझक्कड़ बुलाये गये। उन्होंने, वहाँ आकर जो उन निशानों को देखा, तो उनकी भी बुद्धि चकरा गई, क्योंकि उन्हें भी हाथी का ज्ञान न था। अब भला वे क्या कहते ? लेकिन जो लोग चालाक हैं, वे दूसरों पर अपना रौब जमाये रहने के लिये कभी यह नहीं कहते, कि यह बात हमारी समझ में नहीं आती। चाहे मामला समझें या न समझें, कुछ कह अवश्य देते हैं। ठीक इसी तरह से लालबुझक्कड़ ने, अपना चालाक-दिमाग़ इधर-उधर दौड़ाया और चटपट एक कल्पना करके गाँववालों से कह दिया—

लालबुझक्कड़ बूझिगे, और न बूझे कोई।
पाँवन चक्की बाँधिकै, ख़रगोश कूदा होई॥

यानी, इतने गोल-गोल दाग़ इसलिये पड़ गये हैं, कि खरगोश अपने पैरों में चक्की बाँधकर कूदता हुआ इधर से निकल गया है।

गाँववालों के विषय में कहा जाता है, कि वे लोग लालबुझक्कड़ की इस उक्ति को बिना तर्क किये मान गये।

यह कथा सत्य हो या न हो, लेकिन अन्धविश्वास का एक सुन्दर-चित्र तो अवश्य ही है। यदि, उन लोगों में एक भी तार्किक होता, तो लालबुझक्कड़जी पर प्रश्नों की झड़ी लगा देता और वे एक भी प्रश्न का उत्तर न दे पाते। लेकिन, श्रद्धा के बाहुल्य के मारे यह किसी ने न पूछा, कि महाराज ! खरगोश को चक्की कहाँ मिली ? उसने अपने पैरों में चक्की को कैसे और किस चीज़ से बाँधा ? इतने छोटे-जानवर ने

चक्की उठा कैसे पाई ? और इस तरह टेढ़ा-मेढ़ा क्यों कूदता गया ? आदि। श्रद्धा के आधिक्य से जहाँ अन्धविश्वास उत्पन्न होजाता है, वहाँ यही दशा होती है, यह एक सार्वभौमिक सत्य है !

ईश्वर के अस्तित्व के विषय में भी ठीक यही बात है। वास्तव में, ईश्वर नाम की कोई वस्तु कहीं है ही नहीं। लेकिन, प्राचीन-काल के अन्धविश्वासपूर्ण-युग ने उसे ऐसी दृढ़ता से स्वीकार कर लिया और भावी-सन्तति के जीवन में उसका ऐसा संस्कार उत्पन्न कर दिया, कि हज़ारों-वर्ष बीत जाने और विज्ञान की इतनी उन्नति होजाने पर भी, और तो और, बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग तक ईश्वर का अस्तित्व आँखें बन्द करके मान रहे हैं !

जिस तरह से उस गाँव में लालबुझक्कड़ सर्वज्ञ माने जाते थे, ठीक उसी तरह से हमारे पूर्व-पुरुषों में कुछ लोग लाल-बुझक्कड़ थे। वे लोग, अपना रौब जनसाधारण पर जमाये थे और संसार का कोई भी ऐसा मसला न था, जिसका तात्पर्य, वे और लोगों को न समझाते रहे हों, फिर चाहे ख़ुद उस सम्बन्ध में कुछ भी न जानते हों। लोग, अपने अज्ञान के कारण ऐसे लालबुझक्कड़ों की बातों में अपार-श्रद्धा रखते और उनके कथन में तर्क करना एक प्रकार का अपराध मानते थे। जहाँ तर्क निषिद्ध है, या सामनेवाला तर्क करने की शक्ति ही नहीं रखता, वहाँ वक्ता जो कुछ कह दे, वह सब सत्य ही समझा जाता है।

ऐसे ही सर्वज्ञ समझे जानेवाले लोगों के सामने जब किसी ने यह प्रश्न रक्खा, कि महाराज ! इस लम्बे-चौड़े संसार, पेड़, पृथ्वी, पहाड़, नदी, मनुष्य आदि की रचना किसने की है ? तब उन्हें विचार में पड़ जाना पड़ा। विज्ञान की तो इतनी उन्नति

हुई न थी, जो वे कोई वैज्ञानिक-उत्तर देते। स्वयं उनकी भी समझ में यह न आया, कि यह संसार का इन्द्रजाल बनाया किसने है? यह प्रश्न, कोई साधारण-बात तो था नहीं, जो कुछ प्रामाणिक-उत्तर मिलता। लेकिन, बिना कुछ उत्तर दिये भक्त की उन पर से श्रद्धा जाती थी। श्रद्धा उठ जाने पर, उनकी सर्वज्ञता की प्रसिद्धि में बाधा पड़ती, जो उनके लिये असह्य थी। इसलिये, उन्होंने एक ऐसा उपाय ढूँढ़ निकाला, कि न साँप मरे, न लाठी टूटे। न भक्त की श्रद्धा जाय, न अपनी ही पोल खुले। फ़ौरन कह दिया—भाई! इस संसार के रचयिता 'ईश्वर' हैं। लेकिन, उन्हें अपने उत्तर में स्वयं ही सन्देह था, इसलिये साथ ही यह भी कह दिया, कि वह ईश्वर किसी मनुष्य को इन चर्म-नेत्रों से नहीं दीखता, उसके लिये ज्ञान-नेत्र की ज़रूरत है। जब यह प्रश्न पैदा हुआ, कि वे ज्ञान-नेत्र कैसे मिलें? तब फ़ौरन कह दिया गया, कि भगवद्भजन करते जाओ, वे ज्ञान-चक्षु तुम्हें स्वयं ही कभी मिल जावेंगे। लेकिन, इस मामले में श्रद्धा की पवित्रता आवश्यक-वस्तु है।

इस तरह, उपरोक्त प्रश्न का एक ऐसा उत्तर दे दिया गया, जिसकी सत्यता के लिये कोई प्रमाण माँगने की ज़रूरत ही न पड़े। वहाँ तो सीधा-सादा उत्तर है, कि—"अपनी श्रद्धा ठीक करके भक्ति के मैदान में डटे रहो, जब कभी तुम्हारे ज्ञान-चक्षु खुलेंगे, तुम्हें स्वयमेव ईश्वर-दर्शन होजावेगा।" ज्ञान-चक्षुओं के खुलने की भी कोई मियाद नहीं मुक़र्रर है। वे कब खुलेंगे, यह उन्हीं के शब्दों में सुनिये—

कोटि-कोटि मुनि यतन कराहीं।
अन्त राम कहि आवत नाहीं॥

जब, करोड़ों-जन्म तक सफलता का कहीं ठिकाना नहीं है,

तो भला आज कोई भक्त क्या तर्क करे ? तर्क को गुंजाइश भी तो नहीं है, भेड़ की तरह सिर झुकाकर मानना है, तो हमारे शब्द-जाल को मान लो, नहीं तो अपने घर जाओ, अभी तुम्हारे हृदय-पटल पर माया का जाल पड़ा है, तुम्हें ईश्वर की प्राप्ति न होगी।

जिस तरह से लालबुझक्कड़ के शागिर्दों ने खरगोशवाला क़िस्सा मान लिया था, ठीक उसी तरह से इन भक्तों की भी दशा हुई। "क्या मुनिलोग झूठ कहते हैं ? कभी नहीं। ईश्वर है और इस संसार को निश्चय ही उसने बनाया है।" यह दृढ़-आस्था उनके हृदय में घर कर गई। आगे चलकर, जितने भी धर्म-ग्रन्थ बने, वे सब इसी संस्कारवश या तो ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करके आगे चले हैं, या ईश्वर के अस्तित्व की पुष्टि में अपना राग अलापा है। किसी ने भी पहले ईश्वर को सम्यक्प्रकारेण तर्क की कसौटी पर नहीं जाँचा, कि वास्तव में वह कोई चीज़ है भी, या नहीं ?

यदि, किंचित् भी विचार किया जावे, तो मालूम होजाता है, कि ईश्वर नामक कोई वस्तु है ही नहीं। संसार, अन्ध-विश्वासपूर्ण-संस्कारों के वश, चुपचाप उसकी हस्ती मानता चला जाता है। हम, डंके की चोट पर यह बात ज़िम्मेदारी के साथ कहते हैं, कि वास्तव में ईश्वर एक कल्पना के अतिरिक्त—जो चलतेपुर्ज़े-लोगों ने अपना अज्ञान छिपाने के लिये की थी—और कोई वस्तु नहीं है।

ईश्वरवादी-लोग, अपनी ओर से सब से बड़ी शंका यह पेश करते हैं, कि जब एक क़लम का भी कोई बनानेवाला है, तो इतने लम्बे-चौड़े संसार का बनानेवाला क्यों नहीं है ? जब एक क़लम भी बिना बनाये नहीं बनती, तो यह संसार कैसे

बन गया ? संसार में कोई वस्तु बिना बनाये नहीं बनती। यदि संसार का कोई रचयिता, पालक और संहारक नहीं है, तो यह संसार किसने बनाया और इसका संचालन कौन करता है ?

अब, हम इस शंका के प्रत्येक खण्ड का उत्तर देते हैं। सबसे पहला प्रश्न यह है, कि बिना कर्त्ता के कोई चीज़ नहीं बनती। जब कि क़लम का कोई कर्त्ता है, तो संसार का कर्त्ता क्यों न होगा ? हम पूछते हैं, कि जब बिना कर्त्ता के कोई चीज़ बनती ही नहीं, तो सबसे पहले यह बतलाइये, कि आपके ईश्वर का कर्त्ता कौन है ? उसे किसने बनाया है ? यदि यह कहा जावे, कि ईश्वर तो स्वयं ईश्वर है, उसका कर्त्ता कौन होसकता है ? जब उसका कर्त्ता ही होगा, तो फिर उसका ईश्वरत्व ही क्या है ? तो हम यह कहेंगे, कि इस सिद्धान्त का खण्डन होगया, कि बिना कर्त्ता के कोई चीज़ हो ही नहीं सकती। दूसरा पक्ष इसे स्वीकार करता है, कि ईश्वर बिना किसी कर्त्ता की बनाई चीज़ है। जिस तरह से ईश्वर-वादीलोग यह मानते हैं, कि ईश्वर स्वयं है, उसी तरह यदि हम यह कहते हैं, कि प्रकृति या संसार स्वयं है, उसे किसी ने नहीं बनाया है, तो यह सिद्धान्त कहाँ अटकता है, कि बिना कर्त्ता के कोई चीज़ होती ही नहीं ? यदि ईश्वर का ईश्वरत्व वे इसमें मानते हैं, कि उसका कोई रचयिता नहीं है, तो प्रकृति का प्रकृतित्व यह मान लेने में, कि वह स्वाभाविक है—क्या आपत्ति होसकती है ? इससे सिद्ध हुआ, कि संसार को किसी ने बनाया नहीं है, वह स्वाभाविक है। संसार कब से है, इसका पता नहीं। लेकिन जिस बात का पता न चले, उसके विषय में लालबुझक्कड़ की-सी कल्पनाएँ करके प्रलय और फिर संसार-रचना आदि की झूठी-गप्पें लोगों में प्रचलित कर देना, क्या अपने अज्ञान पर

पर्दा डालना नहीं है ? क्यों न साफ़-साफ़ कह दिया जावे, कि भू-तत्ववेत्ताओं के अनुमान के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं मिलता। जिसे इस विषय में अधिक जिज्ञासा हो, वह भूगर्भ-शास्त्र का अध्ययन करे और सत्य के अधिकाधिक समीप पहुँचने का प्रयत्न करे। धर्मशास्त्रों में इस सम्बन्ध की अपनी-अपनी कल्पनाएँ ठूँसकर, लोगों ने जनता की जिज्ञासा का नाश कर दिया और इस विषय में अधिक जाँच न हो-सकी। कारण कि लोग यह समझ गये, कि ईश्वर ने इस संसार को बनाया है और उसकी लीला को कोई नहीं समझ सकता। जब इस तरह से जिज्ञासा की पूर्ति होगई, तब इस विज्ञान का अन्वेषण अपने-आप कम होता गया, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? वास्तव में यह संसार स्वाभाविक है और इसका संचालन स्वयमेव होता है। प्रकृति की अव्यवस्थितता इसका सब से बड़ा प्रमाण है, कि वह स्वाभाविक है, किसी के द्वारा संचालित नहीं। अस्तु।

ईश्वर के ईश्वरत्व के सम्बन्ध में, उपरोक्त शंका में तीन-बातों पर जोर दिया गया है। १—रचयिता, २—पालक और ३—संहारक। अब, हम इन तीनों-दृष्टियों से ईश्वर का खण्डन करते हैं।

संसार का सिंहावलोकन करने से अपने-आप पता चल जाता है, कि वह स्वाभाविक है। यदि वह ईश्वर का बनाया हुआ होता, तो निश्चय ही इस शक्ल में न होता। एक साधारण-से-साधारण मनुष्य को भी यदि संसार का प्राकृतिक-नक्शा पकड़ा दिया जावे और लाल-पेंसिल देकर दोषों पर चिन्ह लगाने को कहा जावे, तो शायद ही कोई स्थान छूटने पावे। कहीं तो हिमालय जैसा ऊँचा और बर्फ से ढँका हुआ पहाड़ है

और कहीं जैसलमेर का-सा जलशून्य-रेगिस्तान ! कहीं बड़ी-बड़ी झीलें भरी हैं और कहीं लोग पानी के अभाव में प्यासों मरते हैं। कहीं, बड़े-बड़े पाँच महानद हैं और कहीं एक जल-पूर्ण-नाले का भी पता नहीं। कहीं आवश्यकता से अधिक अन्न उत्पन्न होता है और कहीं बाजरे से अधिक कुछ नहीं। साइ-बेरिया में सर्दी से पैर कटते हैं, सहारा के रेगिस्तान में नगर बालू के नीचे दब जाते हैं। कहीं आम जानवर नहीं खाते और कहीं आँकड़े तथा खेजड़े के सिवा कोई वृक्ष ही नहीं है। सारांश यह, कि संसार बिलकुल अव्यवस्थित है। यदि यह किसी का बनाया होता, तो क्या उसमें इतनी भी अक्ल नहीं थी, कि वह सब स्थानों को समान-सुविधा देता ? ईश्वर की जैसी सर्वगुण-सम्पन्न-कल्पना है, वैसा कर्त्ता तो कभी ऐसा ऊटपटाँग-कार्य नहीं कर सकता, जैसा संसार के देखने से विदित होता है। इससे सिद्ध है, कि यह संसार स्वाभाविक है, किसी का बनाया हुआ नहीं।

दूसरी बात यह कही जाती है, कि वह संसार का पालक है। लेकिन, यह भी ठीक नहीं है। जो सारे संसार का पालक है, वह क्या आँखों का अन्धा होगा ? हम जहाँ भी देखते हैं, वहाँ सिवा प्रकृति के रंग के और कोई रंग हमें दिखाई ही नहीं देता। प्रकृति के कोप से, जब किसी प्रान्त-विशेष में अकाल पड़ जाता है, तब लाखों-मनुष्य अन्न-अन्न चिल्लाकर अपने प्राण छोड़ देते हैं। उस समय ईश्वर की पालकता कहाँ गायब होजाती है ? क्या वह उन लाखों-मनुष्यों तथा पशुओं के दुःख नहीं देखता ? यदि कोई यह कहे, कि यह ईश्वर के कोप के कारण ही होता है, तो यह भी ठीक नहीं है। क्या वह ईश्वर ऐसा है, जो अपने कोपभाजन को

अन्न-अन्न करवाकर मार डाले ? आजकल के भारतीय-शासन को लोग निम्न-कोटि का मानते हैं, लेकिन उसमें भी इस बात का ध्यान रक्खा जाता है, कि कोई बन्दी—फिर वह चाहे फाँसी की ही सजा पाया हुआ हो और प्रत्यक्ष सम्राट् का विरोधी हो—भूखों न मरने पावे। जब यह दशा है एक साधारण-शासक की, तब क्या वह ईश्वर सर्वशक्तिमान्-शासक होकर ऐसे अमानुषीय जुल्म करेगा ? हम देखते हैं, कि एक तरफ़ लाखों-आदमी भूखों मर रहे हैं और दूसरी तरफ़ इतना अन्न पैदा होता है, कि उसे उठवाने की चिन्ता होती है। फसल तयार है और ओले बरस पड़े, फलतः सारा अनाज मिट्टी में मिल गया। हरी-हरी खेती खड़ी है, पानी का पता नहीं, वह जहाँ-की-तहाँ और ज्यों-की-त्यों सूख गई। पानी की बाढ़ आई, सैकड़ों गाँव अपनी फसल सहित तबाह होगये। सारांश यह, कि जब जिस चीज़ की संसार को जरूरत होती है, तब वह उपलब्ध होती है और नहीं भी होती। यानी, इस विषय में कोई एक नियम नहीं है। इस अव्यवस्था को देखने से पता चलता है, कि इस संसार का पालक कोई नहीं है। प्रकृति, जब और जिधर अनुकूल हो पड़ी, उधर के लोग सुखी होगये और प्रतिकूल होते ही सर्वनाश का ताण्डव दिखाई देने लगा। भला पालक के होते हुए क्या कभी ऐसी भयावह-स्थिति उत्पन्न होसकती है? यह स्थिति, ईश्वर के अस्तित्व की पोल खोलने के लिये प्रत्यक्ष-प्रमाण है, इससे अच्छा और क्या सबूत चाहिये ?

तीसरी बात, जो ईश्वर के सम्बन्ध में कही जाती है, वह यह है, कि वह संहारक है। संहार का तात्पर्य 'महाप्रलय' या 'क़यामत' है। क़यामत के दिन तो बीत रहे हैं, वह हुई नहीं।

महाप्रलय की कल्पना रबर की तरह लम्बी है, उसे देखने तक इस संसार में कौन जीवित रहेगा, इसका पता नहीं। ऐसी दशा में, प्रलय आदि के गपोड़ों को ताक पर रखकर, हम वर्तमानकाल के छोटे-संहारों पर ही विचार करते हैं। संहार का तात्पर्य, हम मृत्यु मान लेते हैं। कारण, कि प्रलय सब की एक साथ मृत्यु का नाम है और वह तो जब होगी, तब शास्त्रकार उसे देखेंगे! हमारे सामने एक-एक या दस-दस बीस-बीस आदमी मरते हैं, अतः हम संहार को मनुष्य की मृत्यु ही मान लेते हैं। ईश्वरवादीलोग मानते हैं, कि मनुष्य ईश्वर की इच्छा से मरता है। जब ईश्वर जैसे सर्वशक्तिमान् के हाथ में मृत्यु की बागडोर है, तब मृत्यु पर तो उसका नियंत्रण अवश्य ही होगा! यदि मृत्यु पर ही उसका नियंत्रण हो, तो भी हमें उसके अस्तित्व को मान लेने में कोई आपत्ति न होगी।

आम तौर पर देखा जाता है, कि मृत्यु के लिये कोई नियम नहीं है। कभी बूढ़े की मृत्यु होती है, कभी जवान की और कभी बालक की। सारांश यह, कि सभी अवस्थाओं में मृत्यु होती देखी जाती है। जब, मृत्यु के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं है, तब यह मान लेना, कि उसका नियंत्रण किसी शक्ति के हाथ में है, पागलपन के अतिरिक्त और क्या है? यदि, किसी साधारण-शासक को भी मृत्यु का नियंत्रण प्राप्त होता, तो वह कुछ-न-कुछ नियम अवश्य ही बना देता। नियम का अभाव तथा प्लेग, महामारी आदि का एक ही स्थान पर टूट पड़ना स्वयं ही सिद्ध करता है, कि ईश्वर नाम की कोई चीज़ नहीं है, क्योंकि संहार किसी नियम-विशेष में बँधा हुआ नहीं है। प्रकृति, जहाँ और जिसके प्रतिकूल होपड़ी, वहीं संहार का दृश्य उपस्थित होजाता है, इसमें ईश्वर का तो कहीं पता भी

नहीं लगता। आग में हजारों-जीवों का करुण-चीत्कार करते हुए जल जाना, पानी में बहकर हजारों का मर जाना, भूकम्प से नगर के नगर उजड़ जाना, भयङ्कर-बीमारियों के फैलने पर पानी के बुदबुदे की तरह मनुष्यों का नाश, महायुद्धों में मनुष्य-जाति का अकारण सर्वनाश, जहाजों का अकस्मात हजारों-मनुष्यों सहित डूब जाना आदि बातें चिल्ला-चिल्लाकर बतला रही हैं, कि मृत्यु पर किसी का नियंत्रण नहीं है, वह स्वाभाविक है। इन सब बातों को देखकर भी जो लोग ईश्वर को मृत्यु का स्वामी मानते हैं, वे मानों अपनी कल्पित वस्तु—ईश्वर—का स्वयं ही उपहास करते हैं।

यहाँ, कोई यह कह सकता है, कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, वह जो कुछ करता है, न्यायपूर्वक ही करता है। हमलोगों को, उसकी व्यवस्था में जो दोप दिखाई देते हैं, वे हमारे उस अज्ञान के कारण दीखते हैं, जिसके कारण हम उसके पवित्र-न्याय को समझने में असमर्थ हैं।

इस शंका का उत्तर देने से पूर्व, एक बात और बतला देना आवश्यक है। वह यह, कि जो चालाक-लोग दूसरों को अपने भ्रम-जाल में फँसाये रखना चाहते हैं, वे ऐसी वस्तु का हवाला देते हैं, जिसका साबित होसकना सम्भव ही न हो। आस्मान की ओट में बैठे हुए खुदा या पृथ्वी के नीचे क्षीर-सागर में सोते हुए विष्णु के विषय में हम यहाँ जो चाहें सो कहें। कौन कह सकता है, कि यह मामला ग़लत है। जो वस्तु प्रत्यक्ष नहीं है, उसके स्वरूप, कार्य, स्वभाव आदि के विषय में ऐसे आडम्बरपूर्ण-शब्द रच लेना अत्यन्त सरल-बात है, जैसा माया-जाल उपरोक्त शङ्का में रचा गया है।

हम पूछते हैं, कि यदि ईश्वर का पवित्र-न्याय हमारी समझ

में नहीं आता, तो ईश्वर हमें उस न्याय को समझाता क्यों नहीं ? और जब हम जैसे नास्तिक उसके अस्तित्व ही पर हमला करते हैं, तब वह एक आस्मानी-विज्ञप्ति के द्वारा ऐसे भ्रमों का निराकरण क्यों नहीं करता ? भारत-सरकार के विरुद्ध, जब कोई भ्रमपूर्ण-बात जनता में फैलती है, तब वह एक विज्ञप्ति प्रकाशित करके उसका निराकरण करती है। ठीक इसी तरह से, जब ईश्वर के सम्बन्ध में, उसकी न्यायप्रियता के सम्बन्ध में और उसकी आज्ञाओं के सम्बन्ध में संसार में नाना-प्रकार के भ्रम फैले हुए हैं, तब वह एक विज्ञप्ति के द्वारा सब लोगों को सन्मार्ग पर क्यों नहीं लाता ? जब इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है, ईश्वर की न्यायप्रियता समझने का हमारे पास कोई साधन नहीं है, तब केवल धर्माचार्यों के आडम्बरपूर्ण-शब्दों के आधार पर हम ईश्वर की न्यायप्रियता तथा अस्तित्व स्वीकार कर लें, यह कोई बुद्धिमानी नहीं है। अस्तु।

हम, ऊपर बतला चुके हैं, कि ईश्वर में कल्पित तीनों शक्तियों की व्यवस्था का अभाव देखकर यह सिद्ध होता है, कि ईश्वर कोई चीज़ है ही नहीं। अब, हम ईश्वरवादियों की ईश्वरसम्बन्धी-कल्पनाओं का सिंहावलोकन करते हैं। आमतौर पर ईश्वरवादियों की ओर से ईश्वर के न्यायी, दयालु, क्षमाशील आदि गुणों से सम्पन्न होने के राग अलापे जाते हैं। लेकिन, ज़रा-सी तर्कपूर्ण-दृष्टि दौड़ाते ही उसके इन सब गुणों का पोलखाता मालूम होजाता है।

संसार के लगभग सभी प्रधान-प्रधान धर्मों ने, ईश्वर की सन्तुष्टि भक्ति से मानी है। और वह भक्ति है क्या चीज़ ? खुशामद। किसी कवि ने कहा है—

"सच तो यह है कि खुशामद से खुदा राज़ी है।"

ईश्वर से कहते रहिये—"हे भगवान्! तू बड़ा दयालु है, कृपालु है, करुणा-सागर है, संसार का निर्माता है, तूने गज को उबारा, ग्राह को मारा, द्रौपदी की लाज बचाई, तू लापता है, लामिसाल है, हम तेरी शरण हैं, तेरी गौ हैं, दीन हैं, कातर हैं—आदि।" तब तो भगवान् बड़ा खुश रहेगा, तुम्हारे क़सूर भी माफ़ कर देगा और यदि तुम ऐसा न करोगे, तो ईश्वर तुम्हें कृपादृष्टि से कभी नहीं देख सकता। अब, प्रत्येक बुद्धिमान्-मनुष्य सोच सकता है, कि जो न्यायाधीश खुशामदी-पक्ष की ओर झुकता है, वह कहाँ तक न्यायशील होसकता है। जो लोग सदाचारपूर्वक चलते हैं, उन्हें नाना-प्रकार के कष्ट होते देखे गये हैं और जो पक्के-चालाक तथा बेईमान हैं, वे मौज उड़ाते हैं। ईश्वर की कल्पना की व्यवस्था में इससे अधिक अन्यायपूर्ण-स्थिति और क्या होसकती है ?

हिन्दुओं का ईश्वर, अपने नाम के स्मरणमात्र से सब पाप क्षमा कर देता है। रण्डी, जीवनभर दुराचार करती रही, लेकिन तोते को पढ़ाते समय रामनाम का उच्चारण करती थी, अतः वह मरकर स्वर्ग को गई। वाल्मीकि, मरा-मरा जपकर भी ब्रह्मर्षि होगये। अजामिल, जीवनभर नीच-कर्म करता रहा। मरते समय, उस पर जब यमदूतों की मार पड़ने लगी, तब उसने अपने पुत्र नारायण को पुकारा। बस फिर क्या था, भक्तवत्सल-प्रभु ने अपने दूत भेजकर उसे स्वर्ग बुला लिया। इसी तरह की पक्षपातपूर्ण-बातों से हिन्दू-ईश्वर का जीवन भरा पड़ा है। देखिये तो, कैसा मज़ाक़ है, कि अपनी खुशामद या अपना नाम जपता देखकर ईश्वर उसे क्षमा कर देता है। क्या ऐसे ईश्वर में कभी उपरोक्त सद्गुणों का होना सम्भव है ?

मुसलमानों का ख़ुदा और भी अजीब है। भला हिन्दुओं का ईश्वर सीधी तरह ख़ुशामद से मान तो जाता है, लेकिन यहाँ तो वह बात भी नहीं है। ख़ुशामद तो करो ही, साथ-ही-साथ उसके पैग़म्बर की सिफ़ारिश भी लाओ। बिना सिफ़ारिश लाये, तुम्हारे सभी सत्कर्म निरर्थक हैं। यहाँ तो न्याय, दयालुता, क्षमाशीलता की जरूरत ही नहीं है। ख़ुदा की मर्ज़ी इतनी प्रबल है, कि उसके सामने कोई तर्क ही नहीं किया जासकता। फिर भी हमारे दोस्तलोग आँखें बन्द करके यह मान लेते हैं, कि ख़ुदा बड़ा रहीम और इंसाफ़ी है। आश्चर्य है, कि बड़े-बड़े लचकीले-अलफ़ाज उगलनेवाले मुसलमान भाइयों की तर्क-शक्ति ख़ुदा की कसौटी करते समय कहाँ ग़ायब होजाती है !

आगे बढ़कर, जब हम ईसाइयों के गॉड (God) यानी ईश्वर की शक्ल देखते हैं, तो भय के मारे तबियत काँप उठती है। किसी ईसाई से ईश्वर के गुण पूछिये, तो वह न्यायी, दयालु आदि सभी सुन्दर-शब्दों में ईश्वर की प्रशंसा करेगा। लेकिन, वास्तव में गॉड है बड़ी ही भयङ्कर चीज़ ! मुसलमानों के ख़ुदा के समीप यदि हम सिफ़ारिश न ले जावेंगे, तो वह हमारे सद्गुणों पर ध्यान न देकर हमें दोजख़ में डाल देगा। लेकिन, सिर्फ़ हमारे ही पाप-पुण्य के लिये। इसके विरुद्ध, गॉड साहब तो हमें हज़रते आदम के पापों के लिये भी दण्ड देते हैं, हमारे पापों के लिये तो वे देवेंगे ही। ईसाई-धर्म में एक कथा है, कि जब गॉड ने हज़रते आदम तथा हौआ को पैदा किया, तब अपने स्वर्गीय-बाग़ में उन्हें छोड़ते हुए एक वृक्ष की ओर संकेत करके कह दिया, कि देखना, उस वृक्ष के अलावा शेष सब वृक्षों के फल खाना, लेकिन इस वृक्ष के फलों को छूना

मत। आदम, पत्नी-सहित शेप वृक्षों के फल खाते रहे। लेकिन, एक दिन अपनी स्त्री के अत्यन्त-आग्रह से विवश होकर उन्होंने उस निषिद्ध-वृक्ष का फल तोड़कर खा लिया। बस फिर क्या था ? गॉड ने नाराज होकर आदम तथा हौआ को जमीन पर फेंक दिया और उसे इतना क्रोध आया, कि वह अपनी उस अवज्ञा के कारण आदम की सन्तान को आज भी (Eternal Punishment) अनन्त-दण्ड दे रहा है। यानी, जितने भी मनुष्य मरे हैं, वे सब नर्क की भयङ्कर-अग्नि में जलने भेज दिये गये हैं और आगे भी भेजे जावेंगे। हाँ, वे लोग अवश्य ही गॉड की इस क्रोधाग्नि में जलने से बच जावेंगे, जो उसके सुपुत्र ईसामसीह के अनुयायी होंगे और जिनको अनन्त-दण्ड से बचाने के लिये ईसा ने अपना रक्त बहाया है, या जिनके पापों के बदले ईसा सूली पर चढ़ गया है। इस विचार और विश्वास में विचारणीय बात यह है, कि केवल एक फल तोड़ लेने से गॉड को इतना भयङ्कर-क्रोध आगया, कि उसने आदम को स्वर्ग से जमीन पर फेंक दिया। वाह रे गॉड और वाह रे आदम! यदि हजरते आदम भूखे हों और हमारे बाग से पेटभर खाने को फल तोड़ लें, तब भी हमें इतना क्रोध न आवेगा, कि हम उन्हें जमीन पर दे मारें। फिर भला जो गॉड यानी ईश्वर एक फल के लिये उनके जीवन-मरण का विचार किये बिना उन्हें जमीन पर फेंक सकता है, वह दयालु विशेषण के योग्य कैसे होगया, यह समझ में नहीं आता। हाँ, उसे निर्दइयों का राजा कहें, तो कोई बुराई नहीं है। आगे चलकर, उसकी न्यायप्रियता का भी जरा नमूना देखिये। पाप करें हजरते आदम और सजा पावें हमलोग, जो उनके न-मालूम कितनी पीढ़ी बाद हुए हैं! ऐसा बढ़िया-इन्साफ करनेवाला

गॉड यदि न्यायी कहा जावे, तो फिर अन्यायी किसे कहेंगे ? क्या संसार में आजतक कोई और भी ऐसा ज़ालिम देखा गया है, जो किसी के अपराध का दण्ड उसकी सब सन्तानों को और सदैव देता रहे ? जहाँ गॉड की यह स्थिति है, वहाँ यदि ज़ार और नीरो जैसे ज़ालिम-शासक हों, तो उन्हें हम बुरे कैसे कह सकते हैं ?

संसार में जितने भी धर्म हैं, उन सबने इसी तरह ईश्वर की अंधाधुन्ध-कल्पना में अपनी इच्छानुसार दन्तकथाएँ जोड़-कर तथा उसे पूरा पशु बनाकर भी सर्वगुणसम्पन्न माना है। कोई भी धर्म, अपने कल्पित-ईश्वर को, अपने धर्मशास्त्रों के आधार पर न्यायी या दयालु कभी नहीं सिद्ध कर सकता। सब लोगों ने, अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल ईश्वर की कल्पना की है, अपने समाज को भयभीत या प्रभावित करने के लिये उसकी रुचि के अनुकूल दन्तकथाएँ बना ली हैं और ईश्वर का फ़र्ज़ी-भूत उन लोगों की खोपड़ी पर चढ़ा दिया है। वास्तव में, यदि बुद्धिपूर्वक विचार किया जावे, तो सिवा खयाली-पुलाव के वहाँ कुछ है ही नहीं।

ऊपर, हम सिद्ध कर चुके हैं, कि वास्तव में ईश्वर की सब शक्तियों तथा गुणों का वर्णन, केवल कल्पना है। ईश्वर के अस्तित्व की ही तरह, उन गुणों और शक्तियों का अस्तित्व भी लापता है। अब, हम ईश्वर को शासक की दृष्टि से कसौटी पर लगाते हैं।

यदि हम यह मान लें, कि ईश्वर एक शासक है और संसार की सारी व्यवस्था उसी की निगरानी में चलती है, तो भी ठीक नहीं है। विचार करने पर पता चलता है, कि यदि सचमुच ही संसार का कोई अदृश्य-शासक है, तो वह अव्वल-दर्जे का मूर्ख

है। संसार में, यह प्राय: नियम-सा बन रहा है, कि ज़बरदस्त कमज़ोरों पर अत्याचार करते हैं। ऐसी स्थिति में, जो शासक अलग खड़ा-खड़ा तमाशा देखता रहे, वह अयोग्य नहीं, तो और क्या है ? भला कोई बतलावे तो, कि नादिरशाह के क़त्ले-आम के समय, रोमन कैथोलिकों और प्रोटेस्टेण्टों के ज़ुल्म के समय, मुसलमानों के अत्याचार के समय, ज़ार की अन्धेर के समय, बौद्धों के कोल्हू में पेले जाने के समय, साक्रेटीज़ को विष देते समय, मनुष्यों के जीवित जलाये जाते समय और मार्शल-लॉ के समय वह कहाँ चला गया था ? वह तो सर्व-शक्तिमान् माना जाता है, फिर उसने इन सब ज़ुल्मों को तत्क्षण ही रोक क्यों नहीं दिया ? इस शंका के ईश्वरवादीलोग दो उत्तर देते हैं। एक तो यह, कि ये सब अपने-अपने कर्मों के फल थे और दूसरा यह, कि ईश्वर, इन सब ज़ालिमों को अन्त में सज़ा देगा। हम, आगे इन दोनों उत्तरों पर विचार करते हैं।

यदि, नादिरशाह की तलवार से कटनेवाले लोगों को उनके कर्मों के फलों के भोक्ता मान लें, तो यह प्रश्न पैदा होता है, कि क्या ऐसे कर्म करनेवाले सबलोग दिल्ली में ही जाकर इकट्ठे होगये थे और मय स्त्री-बच्चों के सब पापी ही थे ? यदि हाँ, तो इस जन्म के पापों के लिये तो निश्चय ही उन्हें यह सज़ा न मिली होगी। रही पिछले-जन्मों की पाप-शृङ्खला। तो कम-से-कम सज़ा देने से पूर्व उन्हें यह तो बतला देना था, कि तुम्हारे अमुक पाप की यह सज़ा है ! लेकिन, बिना कोई ईश्वरीय आदेश या फ़ैसला सुने ही वे बेचारे काट डाले गये। ऐसी दशा में, यह स्पष्ट है, कि उपरोक्त उत्तर, कि यह उन सब के कर्मों का फल था, निरा ढोंग है। यह कहने के स्थान पर, कि सांसारिक-अव्यवस्था के कारण ऐसा हुआ है, ईश्वरवादी-

लोग कर्मफल का रोना रोने लगते हैं। यदि कोई भी आस्तिक विवेक-दृष्टि से विचारे, तो उसे मालूम होजावेगा, कि यदि हमारा ईश्वर है भी, तो कम-से-कम वह सज़ा देने का ढङ्ग तो बिलकुल नहीं जानता। एक मूढ़-अरब भी यदि क्रोधवश किसी की हत्या करता है, तो उसे कारण तो बतला ही देता है, कि अमुक अपराध के कारण मैं तुम्हारी जान ले रहा हूँ। लेकिन, सर्वशक्तिमान्-ईश्वर भला ऐसा क्यों करने लगा? वह तो ज़ार का पड़दादा जो ठहरा। इतनी ज़बरदस्त अव्यवस्था का संचालक किसी अज्ञात ईश्वर को मानना, प्रत्यक्ष ही अज्ञान है।

दूसरा उत्तर यह दिया जाता है, कि ज़ालिमों को अन्त में उनके कर्मफलों की सज़ा ईश्वर देगा। यह उत्तर और भी अधिक मसखरेपन से भरा हुआ है। ईश्वर जैसा सर्वशक्तिमान्-शासक, जब ज़ुल्म की रोक नहीं कर सकता अथवा ज़ालिम को तत्क्षण सज़ा नहीं दे सकता, तब वह है, ऐसा कहना चण्डू-खाने की गप्प से अधिक क्या महत्व रखता है? अभी तो वह ग़रीबों पर ज़बरदस्तों द्वारा ज़ुल्म होने देता है और आप बैठा-बैठा तमाशा देख रहा है तथा जब क़यामत का दिन आवेगा, तब उन ज़ालिमों को सज़ा देगा। एक देहाती कहावत है, कि—"घड़ी में घर जले, अढ़ाई-घड़ी भद्रा।" आज तो ग़रीब बेचारे तबाह हुए जाते हैं, क़यामत, प्रलय या अन्तिम-दिन किंवा ज़ालिमों के बहुत-से पाप इकट्ठे होजाने पर ईश्वर उन्हें सज़ा देगा। अब कोई यह तो बतलावे, कि उस सज़ा का क्या महत्व है? न तो ज़ालिम की प्रकृति ही सुधरी और न ज़ुल्म ही रुका। हाँ, बदला लेने की अधम-भावना अवश्य ही इस तरह ईश्वर के ज़िम्मे बँध जाती है।

ईश्वर की ही तरह, यदि कोई जिला-मजिस्ट्रेट ब्राण्डी के नशे में मस्त रहकर अपने जिले के चोर-बदमाशों को आजाद कर दे और कह दे, कि इन ससुरों को जिन्दगी भर खूब चोरी कर लेने दो, बुढ़ापे में सबको पकड़-पकड़कर मैं फाँसी पर लटकवा दूँगा, तो क्या हम उस जिला-मजिस्ट्रेट को अच्छा शासक कहेंगे ? कभी नहीं। वल्कि, जब हम उसकी यह दुर्व्यवस्था देखेंगे, तब बड़े-अधिकारियों से अनुरोध करेंगे, कि वे ऐसे मजिस्ट्रेट को पागलखाने भेज दें, वह शासन के लिये बिलकुल-अयोग्य है। जब एक साधारण-शासक के विषय में हमारी यह धारणा बन सकती है, तब सर्वशक्तिमान्-ईश्वर के इस तरह लापरवाह रहने पर हम उसे न्यायी मानें, उच्च-कोटि का शासक कहें, इससे बढ़कर पागलपन और क्या होसकता है ? अच्छा-शासक वह माना जाता है, जो जुल्म की पहले ही रोक करवावे और यदि उसकी जानकारी के अभाव में कोई जुल्म होजाय, तो जालिम को फौरन पकड़कर सजा दे। यह नहीं, कि पाप इकट्ठे होने का रास्ता देखे। जब एक कलक्टर, जो मनुष्य ही है, जुल्म को पहले ही रोकने का प्रयत्न करता है, तब सर्वशक्तिमान् ईश्वर, जो लोगों के हृदय के भावों तक का ज्ञाता माना जाता है, जुल्म की रोक पहले ही क्यों नहीं कर देता ? यदि रोकने से उसकी शान बिगड़ती है, तो जुल्म होते ही वह जालिम को उसकी सजा क्यों नहीं देता ? एक मजिस्ट्रेट के लिये तो सबूत की जरूरत पड़ती है, उसके लिये तो इसकी भी आवश्यकता नहीं। वह तो सब जानता ही है। फिर, जहाँ कोई जालिम जुल्म करे, वहीं उस पर बिजली क्यों नहीं गिर पड़ती ? उसके हाथ-पैर क्यों नहीं टूट जाते ? आज-कल, जरा-जरा-से हिन्दू-मुस्लिम दंगों की रोक के लिये पहले

ही पुलिस तैनात कर दी जाती है। किन्तु, ईश्वर के यहाँ ऐसी पोल है, कि बड़े-बड़े नरसंहारों का भविष्य जानकर भी वह उन्हें नहीं रोकता। नादिरशाह आदि ज़ालिमों को तमाम उम्र ज़ुल्म करने का मौक़ा उसने दिया, कभी रोकने का प्रयत्न नहीं किया।

उपरोक्त विचारों से स्पष्ट ही सिद्ध होजाता है, कि उस काल्पनिक-ईश्वर को संसार का सफल-शासक मानना, स्वयं अपने आपको धोखा देना है ! अस्तु।

हम, ईश्वर के सब गुणों और शक्तियों का अभाव ऊपर सिद्ध कर चुके हैं। अब, हम देखते हैं, कि संसार में प्रचलित ईश्वर कल्पना में कौन-कौन-से दुर्गुण पाये जाते हैं।

ईश्वर, खुदा या गॉड अव्वल दर्जे का ज़ालिम और ज़ुल्मपसन्द है, यह तो ऊपर बतलाया ही जा चुका है। जो शासक ज़ुल्म होने दे, ज़ालिमों को समय पर सज़ा न दे, वह स्वयं भी ज़ालिम ही है। और विचार करने पर यह भी मालूम होता है, कि वह अव्वल-दर्जे का .खुशामदपसन्द है। .खुशामदी-लोगों को पार लगाता है और जो लोग ख़ुशामद नहीं करते, उन्हें डुबो देता है। रोज़ प्रार्थना करते रहो, तब तो ठीक है, वर्ना नर्क तुम्हारे लिये तयार है ही। मुसलमानों के यहाँ शैतान का जो क़िस्सा मशहूर है, वह ईश्वर की ख़ुशामदपसन्दी का सबसे बड़ा सबूत है। शैतान, पहले खुदा का बड़ा भक्त और कृपापात्र था। एक दिन, उसने गर्व में आकर .खुदा को सलाम नहीं किया या सिजदा नहीं बजाया। बस फिर क्या था, अल्लाह-ताला बिगड़ उठे और उसे शैतान बनाकर ही छोड़ा। शैतान के सम्बन्ध में एक शायर ने कहा है—

गया शैतान मारा एक सिजदे के न करने से।
अगर लाखों वरस सिजदे में सर मारा तो क्या मारा ॥

यानी, लाखों वर्ष तक की हुई सारी इबादत पर सिर्फ़ एक वार .खुशामद न करनेमात्र से पानी फिर गया। फिर, .खुदा क्रोधी भी कितना ज़बरदस्त है, कि लाखों-वर्ष पुराने सेवक को, एक ही भूल में वर्बाद कर दिया। ईसाइयों के गॉड की (Eternal Punishment) अनन्तदण्डवाली कथा हम ऊपर लिख ही चुके हैं। हिन्दुओं का ईश्वर तो ऐसा .खुशामद-पसन्द है, कि एक वार उसका नाम जप लो, वस वेड़ा पार है।

सभी धर्मों का ईश्वर ऐसा स्वेच्छाचारी है, कि वह विना कोई कारण वतलाये जो चाहे सो करे, उसे कोई रोक नहीं सकता। उसके दरवार में अधाधुन्ध हिसाव-किताव है। कभी वह गणिका को तोता पढ़ाने से स्वर्ग भेज सकता है, कभी राजा वलि जैसे धर्मात्मा को बाँधकर पाताल। कभी अजामिल को पुत्र पुकारने के कारण स्वर्ग लेजाता है, कभी राजा नृग जैसे दानी को हज़ारों-वर्षों के लिये गिरगिट बना देता है। ऐसी अन्धेरगर्दी समझकर ही तुलसीदास ने कहा है—

खीझे दीन्हो परम-पद, रीझे दीन्हो लंक।
अधाधुन्ध-दरवार है, तुलसी भजो निःशंक ॥

यानी, ईश्वर के यहाँ का कोई नियम नहीं है, वहाँ सोलहो आने पोल है। शरावी की तरह, विना विचार किये किसी को वह बहुत-सा इनाम दे देता है और किसी रास्ते चलते भले-आदमी को पचास-गालियाँ। उसकी हठ, दुराग्रह आदि के लिये कोई कारण नहीं बतलाया जाता। वह विना नियम के चलता है और जो चाहता है, सो करता है। सारांश

यह, कि जब ईश्वर स्वेच्छाचारी है, उसके शासन का कोई नियम नहीं है, तब शेष सारे ही दुर्गुण उसमें क्यों न होंगे ? वाह री आस्तिकों की कल्पना। अस्तु।

"यूरोप का कोई नास्तिक जब मरने लगा था, तब उसके मुँह से सहसा ईश्वर का नाम निकल पड़ा।" यह एक बहुत-बड़ा प्रमाण ईश्वरवादी अपनी ओर से पेश करते हैं और प्रश्न करते हैं, कि यदि ईश्वर नहीं है, तो अन्तिम-समय में उसे ईश्वर की शरण क्यों लेनी पड़ी ? इस शङ्का के सत्य होने में यद्यपि कोई प्रमाण नहीं है, तथापि क्षणभर के लिये हम इसे सत्य ही मान लेते हैं। यदि उस नास्तिक के मुँह से ईश्वर का नाम ही निकल पड़ा था, तो इसका क्या सबूत है, कि उसने ईश्वर की शरण ली ? क्या सभी मरनेवाले आस्तिक अन्तिम-समय में ईश्वर की ही शरण लेते हैं ? यदि नहीं, तो फिर वह नास्तिक होकर ईश्वर की शरण क्यों जाता ? जिस कार्य को उसने अपने सारे जीवन में, होश दुरुस्त रहते नहीं किया, उसे ही वह बेहोशी की हालत में, मरते समय करने लगा ? आश्चर्य है। सभी आस्तिक कहते हैं, कि 'माया-जाल' में फँसे रहने के कारण मनुष्य को अन्तिम-समय में ईश्वर का नाम नहीं याद आता। बल्कि, वह धन-माल तथा पुत्र-पुत्री की चिन्ता करता-करता ही मर जाता है। सारांश यह, कि अहर्निशि जिस चीज़ की चिन्ता रहती है, मरते समय भी उसी का ध्यान रहता है। यदि, एक सेठजी मरते समय सन्निपात के वश रुपया-रुपया चिल्लाने लगते हैं, तो कोई आश्चर्य नहीं, कि एक वीर-नास्तिक, जो जीवनभर ईश्वरवाद के ढोंग का खण्डन करता रहा है, मरते समय अपने चिन्त्य-विषय ईश्वर का नाम ले पड़े। सन्निपात में कही हुई बातों का यदि कोई

मूल्य होता है, तो उस नास्तिक के द्वारा ईश्वर का नाम ले लेने का भी मूल्य माना जावे। दूसरी बात यह, कि सम्भव है, उसने अपने साथियों से यह कहना चाहा हो, कि इस ईश्वर-वाद के ढोंग की खूब धज्जियाँ उड़ाना। लेकिन, ईश्वर शब्द मुँह से निकलते ही उसकी शक्तियाँ क्षीण होगई हों। यदि यही मान लिया जावे, कि उसने भक्तिवश ईश्वर का नाम लिया था, तो—

कोटि-कोटि मुनि यतन कराहीं,
अन्त राम कहि आवत नाहीं।

यह कथन झूठ होजावेगा और यह मानना पड़ेगा, कि मुनियों के करोड़ों-जन्मों के प्रयत्न के मुक़ाबिले उस नास्तिक का खण्डन ही कहीं श्रेष्ठ था, जो कम-से-कम अन्तिम-समय में उसके मुँह पर ईश्वर का नाम तो ले आया। कैसा मज़ाक़ है। जन्म भर उसने पादरियों के होश उड़ाये, अन्तिम-समय में उसने कहा हो या न कहा हो, दोस्तलोगों ने यह गप्प उड़ा दी। अस्तु।

कुछ लोग, जो पढ़े-लिखे तथा समझदार हैं, लेकिन ईश्वरवादी होते हुए भी किसी तरह ईश्वर की सिद्धि के प्रमाण नहीं दे पाते, वे कहते हैं, कि चाहे जो हो, ईश्वर हो या न हो, लेकिन यह तो निश्चित ही है, कि विपत्ति के समय उसका नाम स्मरण करने से मनुष्य के हृदय में एक प्रकार की शान्ति आजाती है।

हम, उनसे यह पूछते हैं, कि क्या यही भावना गुलामी की जन्मदात्री नहीं है ? क्या इसी भावना ने मनुष्य के हृदय में निर्बलता तथा विपत्ति के समय असहिष्णु और धैर्यहीन

होजाने का दुर्गुण नहीं पैदा कर दिया है ? क्या विपत्ति में पड़ जाने पर, मनुष्य एक मूर्ख-क्रीतदास की भाँति दोनों हाथ और घुटने टेककर दीनता नहीं दिखाने लगता है—जब कि उसे धैर्यपूर्वक विपत्ति का मुक़ाबिला करना चाहिये ? क्या इसी भावना ने मनुष्य को सारे जीवन में पराश्रित नहीं बना दिया है ? यदि हाँ, तो एक क्षण के लिये हम अपने दिल से दूसरे की ओट में छिपकर शान्ति का झूठा-सुख अनुभव करें, इससे बढ़कर भूल और क्या होगी ? तिसपर मज़ा यह है, कि उसके स्मरण से आजतक किसी की विपत्ति कटी ही नहीं। बड़े-बड़े आस्तिकों को, विपत्ति के समय ईश्वर-शरण लेते तथा फिर भी विपत्ति से पिस जाते हमने अपने नेत्रों से देखा है। जब विपत्ति कटती नहीं, तब शान्ति कैसी ? फिर तो कबूतर की-सी ही दशा समझनी चाहिये। कहा जाता है, कि कबूतर जब बिल्ली को अपने पास पहुँची देखता है, तो झटपट आँखें बन्द करके यह समझ लेता है, कि बिल्ली है ही नहीं। लेकिन, क्षणभर में उसके परों के सिवा कुछ रहने नहीं पाता। कबूतर, उड़ जाने के बदले क्षणिक-शान्ति का सुख अनुभव करता-करता चल देता है। ठीक इसी तरह से आस्तिकलोग, विपत्ति से बच निकलने का उपाय सोचने के बदले, क्षणभर के लिये ईश्वर-शरण की शान्ति का सुख अनुभव करने लगते हैं और विपत्ति उन्हें पीस डालती है। वाह री कबूतर की-सी क्षणिक-शान्ति ! धन्य है तू !

अब, हम यह पूछते हैं, कि यदि ईश्वर है, तो वह सब लोगों को दिखाई क्यों नहीं देता ? ईश्वरवादियों की ओर से इसका यह उत्तर दिया जाता है, कि जबतक तुम्हारा

हृदय शुद्ध नहीं होता, तबतक तुम्हें ईश्वर का दर्शन नहीं हो-सकता। जिन लोगों के हृदय शुद्ध हैं, उन्हें ईश्वर के दर्शन होते हैं। जब उनसे पूछा जाय, कि वह समय कब आवेगा, तो वे चट-से कह देते हैं, कि भजन करते जाओ, कभी-न-कभी दर्शन हो ही जावेंगे—आदि।

इस स्थान पर, नकटों के ईश्वरदर्शनवाली कहानी लिखने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते। किसी चालाक-आदमी की नाक कट गई थी। उसने सोचा, और सबलोग नाकवाले हैं, फिर मैं ऐसा कोई उपाय क्यों न करूँ, कि मेरे समाज की भी वृद्धि हो। तब उसने मशहूर किया, कि मुझे ईश्वर के रथ में जाते हुए प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। लोग, जब उसके पास दौड़कर आते, तो वह चट-से कह देता, कि पहले नाक कटाओ, तब ईश्वर के दर्शन होंगे। जो लोग अत्यन्त-श्रद्धालु होते, वे अपनी नाक कटा डालते। नाक कटाने पर प्रथम नकटा उनसे स्पष्ट कह देता, कि—"यह मेरी चालाकी थी। अब, तुम भी यही कहो, जिसमें हमारा समाज बढ़े, सच कहने से कोई लाभ न होगा।" फलतः वे लोग उसके चक्कर में पड़ वैसा ही कहकर और लोगों को भी फाँसने लगे। इसी तरह से, बहुत से नकटे होजाने पर एक भला-आदमी उस समाज का चेला हुआ और नाक कट जाने पर जब उसने यह षड़यन्त्र जाना, तब सबलोगों पर प्रकट करके दूसरों की जान बचाई।

ठीक इसी तरह से ईश्वरवादीलोगों का भी षड़यन्त्र है। "अमुक महात्मा को ईश्वर-दर्शन हुआ था, अमुक गृहस्थ के साथ ईश्वर खेला था, मुझे ईश्वर ने ऐसा आभास दिया था।" आदि गपोड़े लगाकर आस्तिकलोग दूसरों से कहते

हैं, कि यदि ईश्वर-दर्शन करना है, तो तुम भी हमारी तरह हाथ में तँबूरा या करताल लेकर "जय दामोदर जय घनश्याम, जानकीवल्लभ सीताराम" जपते रहो। नकटों की चालाकी से आस्तिकों की चालाकी में फ़र्क़ इतना ही है, कि ये प्रत्यक्ष के बखेड़े में पड़कर अपनी पोल नहीं खुलवाते, बल्कि भविष्य का सब्ज़ बाग़ दिखलाकर फँसाये रहते हैं।

हम यह कहते हैं, कि जो सत्य है, वह सदैव सत्य ही है। पानी पीने से नास्तिक की प्यास बुझती है, त्यों ही आस्तिक की भी। आग छूने से आस्तिक और नास्तिक दोनों के हाथ जलेंगे। आग और पानी की ही तरह वायु आदि सार्वभौमिक-सत्य हैं। जब ये चीजें सार्वभौमिक-सत्य हैं और सबको समानरूप से गुण-दोष पहुँचाती हैं, तो कोई कारण नहीं, कि ईश्वर सार्वभौमिक-सत्य होकर सब लोगों को दिखाई न दे। हम यह नहीं चाहते, कि आस्तिकों की ही तरह ईश्वर हम पर भी कृपा करे। लेकिन, वह हमें दिखाई भी न दे, यह ज़ुल्म है। यदि, राजासाहब की हम पर कृपा होगी, तो वे हमें नाना-प्रकार की उपाधियों से विभूषित तथा धनोपहार देकर धनी बना देंगे। यदि अकृपा होगी, तो जेलखाना तयार ही है। यदि, राजा-साहब हमें अपना मंत्री न बनावें, उपाधियाँ न दें, धन न दें, तो न दें; लेकिन कम-से-कम सड़क पर जाती हुई उनकी सवारी तो हमें दिखाई दे! राजासाहब के दर्शन के सम्बन्ध में यह कहना, कि बिना मंत्री या मुसाहिब की योग्यता पैदा हुए किसी शख़्स को राजा दिखाई ही नहीं देता, प्रत्यक्ष पागलपन है। क्या राजा के दर्शन करते ही हम धनी हो-जावेंगे ? कदापि नहीं। देख लेने से दरिद्र नहीं कटेगा, वह तो उनकी कृपा से ही कटेगा। इसी तरह, ईश्वर-दर्शन से हमारे

पाप कटकर हमें स्वर्ग की प्राप्ति न होगी, बल्कि जब ईश्वर की दया होगी, तभी हमें स्वर्ग मिल सकेगा। जब यह स्थिति है, तब कोई कारण समझ में नहीं आता, कि ईश्वर हमें दिखाई न दे।

ज्ञान-चक्षुओं का जो पचड़ा गाया जाता है, वह दूसरों को फँसाने का ढोंगमात्र है। आजतक, किसी शरीर-शास्त्रवेत्ता ने नहीं बतलाया, कि मनुष्य के भीतर कहीं दो नेत्र और होते हैं। अपना ढोंग फैलाने के लिये लोग ज्ञान-चक्षु की दुहाई देते हैं।

मनुष्य को, इन्द्रियों की सहायता के बिना कोई ज्ञान हो ही नहीं सकता। जब, ईश्वर के सम्बन्ध में यह कहा जाता है, कि उसको जानने में इन्द्रियों की सहायता काम नहीं देती, तभी यह बात समझ लेनी चाहिये, कि वहाँ सब पोल है। इन्द्रियों की सहायता न लेने पर हम किसी चीज़ का ज्ञान प्राप्त ही नहीं कर सकते। ऐसी दशा में स्पष्ट है, कि दूसरों की देखा-देखी या दूसरों के बहकाने में फँसकर ईश्वर का अस्तित्व मान लेने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं रह जाता।

भारतवर्ष में, प्राचीनकाल के ग्रन्थों में तो ईश्वर-दर्शन के बड़े-बड़े राग गाये गये हैं, लेकिन इस बीसवीं-सदी में किसी भले-आदमी को ईश्वर-दर्शन नहीं हुआ। हाँ, 'कल्याण' के संचालक श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार को अवश्य ही वैजनाथधाम के तपोवन में ईश्वरलोक जाने और श्री जयदयाल गोयनका द्वारा लगाये गये भोग का ईश्वरप्रदत्त-प्रसाद पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था! हमारा विश्वास है, कि श्री० हनुमानप्रसादजी कभी हमें भी उस भक्तवत्सल-प्रभु के दर्शन करवाकर हमारा यह "अज्ञान" दूर करेंगे। श्री हनुमानप्रसादजी के और भी कई साथियों या दोस्तों को ईश्वर की सहायता

प्राप्त हुई थी। किसी के घोड़े का रंग ईश्वर ने बदला, किसी को धन दिया, किसी का क़र्ज़ अदा किया, किसी के बदले नौकरी बजाई, किसी के जूते साफ़ किये—आदि। लेकिन आश्चर्य है, कि वह ईश्वर हमारी सेवा करना तो दूर रहा, कभी हमें दिखाई भी नहीं देता। अत्यन्त-खेद है, कि श्री हनुमानप्रसादजी जैसे सभ्य और शिक्षित-आदमी, इस बीसवीं-सदी में भी अन्धश्रद्धा के कारण इस तरह की गप्पें उड़ाकर लोगों को भ्रम-जाल में फँसाते हैं। उनके पत्र 'कल्याण' का कोई अङ्क शायद ही ऐसा हो, जिसमें ईश्वर-दर्शन आदि के गपोड़े न भरे हों। बलिहारी है वह भक्त-मण्डली और उसके अनुयाई भक्तवृन्द।

हम, संसार के सभी आस्तिकों को चैलेञ्ज करते हैं, कि यदि ईश्वर सत्य है, तो वह हमें भी दिखलाइये। यदि वह तुम्हें ही दिखाई देता है, तो हम डङ्के की चोट पर यह कहेंगे, कि तुम्हारा कथन बिलकुल झूठ है, नकटों की-सी समाज-वृद्धि का उपायमात्र है। अस्तु।

जिस तरह से गवाँर-आदमी, अपने बच्चों की तबियत में भूत-प्रेत आदि के संस्कार जन्म ही से डाल देते हैं और वे संस्कार इतने प्रगाढ़ होजाते हैं, कि उस बालक के बूढ़े होजाने तक और कभी न देखने पर भी भूत का भय सदैव उसके दिल पर सवार रहता है, ठीक उसी तरह से जो लोग पढ़े-लिखे हैं, या जो अपने-आपको आस्तिक मानते हैं, वे अपने बालकों के दिमाग़ में ईश्वर का भूत घुसेड़ देते हैं। यह भूत, बालकों की तबियत में इस तरह घर कर जाता है, कि बड़े-बड़े विद्वान् होजाने पर तथा कभी ईश्वर नामक किसी वस्तु को न देखकर भी उनकी तबियत में ईश्वर के प्रति अपार-श्रद्धा

रहती है! इस जन्म-संस्कार का ही यह दुष्परिणाम है, कि बड़े-बड़े तार्किक-आर्यसमाजीलोग, साकार-निराकार के बखेड़े में तो जरूर ही उलझे रहते हैं, लेकिन कभी यह नहीं सोचते, कि जिस ईश्वर के आकार का हम शास्त्रार्थ कर रहे हैं, वह है भी, या नहीं? यदि, जरा-सा विचार किया जावे, तो अपने-आप मालूम होजावे, कि ईश्वर क्या चीज है!

हम ऊपर बतला चुके हैं, कि न तो ईश्वर दिखाई देता है, न हम उसकी शक्तियों या सद्गुणों का ही पता पाते हैं। हाँ, धर्मशास्त्रों के कथनानुसार वह जिद्दी, मूढ़ और स्वेच्छाचारी अवश्य ही साबित होता है। ऐसी दशा में, ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करना, भयङ्कर-भूल है। हमारा, पाठकों से अनुरोध है, कि वे अपने जन्म-संस्कारों को ताक़ पर रखकर एक बार बुद्धि के द्वारा ईश्वर के सम्बन्ध में विचारें तो, कि यदि ईश्वर दीखता नहीं है, तो उसकी शक्तियाँ या सद्गुण भी क्यों नहीं दिखाई देते? जब, हमें वह किसी तरह नहीं दिखाई देता, तब और क्या प्रमाण चाहिये, कि वह नहीं है?

हम पुनः कहते हैं, कि ईश्वर की कल्पना अज्ञान के कारण हुई है और यह केवल धोखा देनेवाला ढोंग है।

आत्मा क्या है ?

कहावत मशहूर है, कि—"एक झूठ सौ झूठों को जन्म देती है।" जब, लालबुझक्कड़ों ने ईश्वर की कल्पना करके उसे संसार में फैलाया, तब उनके शिष्यों ने उनसे पूछा, कि हमारे शरीर में वह कौन-सी चीज़ है, जिसके कारण हम जीवित हैं और जिसके निकल जाने पर हमारी मृत्यु होजाती है।

प्रश्न करनेवाले की जिज्ञासा तो अच्छी ही थी। लेकिन, अफसोस तो यह है, कि लालबुझक्कड़जी को शरीर-शास्त्र का किंचित् भी ज्ञान न था। यह स्थिति होने पर भी, हमारे पूर्वकथनानुसार यदि वे अपने शिष्य की इस ज़बरदस्त-शङ्का का कोई ख़ास उत्तर न देते, तो लोगों की उन पर से श्रद्धा जाती थी। जानते तो वे ख़ुद भी न थे, लेकिन उत्तर अवश्य ही देना था। इसलिये उन्होंने चालाकी से ऐसा उत्तर दिया, कि शिष्य को संतोष भी होजाय और उत्तर को साबित करने की भी जरूरत न पड़े। उन्होंने कहा—"हमारे शरीर में 'आत्मा' है, जिसके कारण हम जीवित हैं। हम, 'आत्मा' यानी छोटे-ईश्वर हैं और परम+आत्मा=परमात्मा बड़ा-ईश्वर है। परमात्मा की तरह आत्मा भी ज्ञान-चक्षु से ही दीख पड़ता है। इंद्रियों की सहायता से वह नहीं जाना जासकता।"

ईश्वर के सम्बन्ध में एक झूठी-कल्पना करने के कारण, उन्हें यह तथा ऐसी ही और भी सैकड़ों ऊटपटाँग-कल्पनाएँ

करनी पड़ीं। यदि, वे प्रारम्भिक-गपोड़ा न लगाते, तो उन्हें अपना अज्ञान छिपाने के लिये ये सब फिजूल-कल्पनाएँ कभी न करनी पड़तीं। अन्धश्रद्धा ने, उन लोगों की झूठी-बातों पर विश्वास करवाकर हमारे भोले-भाले पूर्वजों को उस गर्त्त में ढकेल दिया, जहाँ से आजतक हमलोग नहीं निकल पाये और न शीघ्र ही सबके निकल आने की आशा ही है। खेद।

हम, ऊपर कह चुके हैं, कि उन ख्यातिप्राप्त और सर्वज्ञ समझे जानेवाले लोगों ने, अपना अज्ञान छिपाने के लिये आत्मा की कल्पना करके उसे ऐसी चीज बताया था, जो इन्द्रियों की सहायता से न जानी जासके। यहाँ, यह ध्यान रखने की आवश्यकता है, कि जितनी भी चीजें अस्तित्वहीन हैं, उन सबके विषय में यही बात कही गई है, कि वे तो इन्द्रियों की सहायता से जानी ही नहीं जासकतीं, या अप्रत्यक्ष हैं। ईश्वर, भूत-प्रेत, स्वर्ग-नर्क, पुनर्जन्म, देवी-देवता आदि सभी ऐसी चीजें हैं, जो कभी साधारण-मनुष्य को तो दीख ही नहीं सकतीं। उनके विषय में आँखें बन्द करके लोग इस आशा पर विश्वास कर लेते हैं, कि भविष्य में हमें उनका ज्ञान अपने-आप होजावेगा। जनता यह नहीं सोचती, कि जब हमें आज कोई वस्तु दिखाई ही नहीं देती, तब उसके अस्तित्व पर विश्वास कैसे करें तथा कैसे हमें भविष्य में उसका सम्यक्-ज्ञान होजावेगा। अस्तु।

जब, आत्मा का अस्तित्व, प्रगाढ़-श्रद्धा यानी अन्धविश्वास के बिना जाना ही नहीं जासकता, तब यह तो सभी बुद्धिमान् सोच सकते हैं, कि वह कोई वस्तु है ही नहीं। जो वस्तु है, उसकी जानकारी सबलोगों को होनी चाहिये, फिर भले ही उसका सम्यक्-ज्ञान केवल आत्मार्थियों को ही हो। यह तो केवल बहकाने को ढोंग है, कि श्रद्धालुओं को ही आत्मा के दर्शन होते हैं।

आजतक, बड़े-बड़े शरीर-शास्त्रवेत्ता होचुके हैं, डाक्टरी-विद्या उन्नति के उच्च-शिखर पर पहुँच चुकी है, मनुष्य के शरीर के छोटे-से-छोटे तन्तुओं का भी वैज्ञानिक-अन्वेषण होचुका है, लेकिन किसी भी शरीर-विशेषज्ञ ने आजतक यह नहीं कहा, कि शरीर में आत्मा भी कोई चीज़ है।

छोटी-से-छोटी चीज़ों को देखने के लिये सूक्ष्मदर्शक-यन्त्रों का आविष्कार हुआ है, जिनके सहारे पानी की एक बूँद में कीड़ों का समूह देखा जासकता है, रक्त में कीटाणु देखे जासकते हैं। दूर की वस्तुओं को देखने के लिये बड़े-बड़े दूरबीन बने हैं, जिनसे कोसों की चीज़ पास ही दीखने लगती है। ऐसे-ऐसे यन्त्रों के बन जाने पर भी किसी वैज्ञानिक ने नहीं कहा, कि हमने अपने यन्त्र से कभी आत्मा नामक वस्तु को देखा है।

कसाइयों ने, अपनी छुरी से हज़ारों-जीवों को काट डाला, फ़ौजी अफ़सरों ने अपने हथियारों के सहारे हज़ारों-सैनिकों को मारा और मरवा डाला, डाक्टरों और नर्सों तथा सेवा-भावी-सज्जनों ने हज़ारों-आदमियों को अपने सामने मरते देखा, शिकारियों ने हज़ारों-पक्षी तथा हरिण मारे, लेकिन आजतक कोई यह नहीं कह सका, कि हमने आत्मा को जाते देखा है।

आत्मा का लक्षण बतलाते हुए गीताकार कहते हैं—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥

अर्थात्—वह आत्मा शस्त्र से काटा नहीं जासकता, अग्नि में जलता नहीं, न पानी में भीगता है, न हवा में सूखता है।

हमारी दृष्टि से भी गीताकार का कथन सच ही है। सचमुच जब आत्मा एक कल्पनामात्र है, तब कौन उसे काट सकता है, कौन जला सकता है, कौन भिगो या सुखा सकता है। ये सारे कार्य तो उस वस्तु के साथ होसकते हैं, जिसका कोई अस्तित्व हो। जो चीज़ महज़ ख़याली-पुलाव है, उसका कोई क्या बिगाड़े ? लेकिन नहीं, गीताकार का उद्देश्य तो उस पिछली गप्प को, कि आत्मा है, पुष्ट करना है। अब हम आगे बतलावेंगे, कि किस तरह आत्मा के दो-टुकड़े होजाते हैं।

सभी आस्तिक मानते हैं, कि एक मनुष्य के शरीर में एक ही आत्मा रहता है और उस आत्मा के निकल जाते ही शरीर मर जाता है। वह आत्मा, शरीर के किस भाग में रहता है, इसका तो आजतक किसी ने उत्तर ही नहीं दिया। ख़ैर, किसी अंग में रहता ही होगा, हमें इससे कोई मतलब नहीं। हम तो आत्मा के टुकड़े देखना चाहते हैं।

एक मनुष्य को यदि कमर से काटकर दो-टुकड़े कर दिया जावे, तो ऊपरवाला हिस्सा अलग तड़फड़ाने लगेगा और नीचेवाला अलग। आत्मा के बिना तो शरीर में जीवन रहता नहीं, ऐसी दशा में आस्तिकों को मानना पड़ेगा, कि दोनों-टुकड़ों में आत्मा है, तभी तो वे तड़फड़ाते हैं। अब, या तो एक नया-गपोड़ा और लगावें, कि दूसरे-भाग में एक नया-आत्मा फ़ौरन घुस गया, या चुपचाप यह स्वीकार कर लें, कि आत्मा कोई वस्तु नहीं है। यदि दोनों-टुकड़ों में आत्मा मानते हैं, तब तो तलवार से कटकर दो भागों में विभक्त होजाने के कारण गीताकार का आत्मा सम्बन्धी कथन झूठ होजाता है और यदि आत्मा का अस्तित्व अस्वीकृत कर देते हैं, तो भी। दो में से एक के मंजूर करते ही गीताकार की पोल खुल जाती है।

शरीर में, आत्मा कहाँ से आता है, क्यों आता है, किस स्थिति में रहता और किस दशा में भाग जाता है, आदि प्रश्नों का कोई सन्तोषजनक-उत्तर—अधाधुन्ध किताबी-गपोड़ों के सिवा—आजतक मिल ही नहीं सका है। इन सब गहन-प्रश्नों की छानबीन में पाठकों को न उतारकर, हम सीधे-सादे प्रश्नों के द्वारा ही यह सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे, कि वास्तव में आत्मा भी ईश्वर की ही भाँति एक गपोड़ा है।

गीताकार के कथनानुसार, थोड़ी देर के लिये हम शरीर में आत्मा की स्थिति और उसी के द्वारा जीवन का रहना मान लेते हैं। यह मानकर अब हम देखते हैं, कि वास्तव में आत्मा, अग्नि, पानी, हवा आदि के वश है या नहीं।

एक भले-चंगे आदमी के जिस्म में यदि हम बिजली का तेज़-करेण्टवाला तार छुआ दें, तो एक क्षण में ही आत्मा उस शरीर को छोड़ भागता है। हम पूछते हैं, कि जब शरीर के होते हुए भी आत्मा भाग गया, तो क्या आत्मा इतना कमज़ोर है, कि वह बिजली के धक्के से भागता है?

एक मनुष्य के शरीर में, हम आवश्यकता से अधिक ठण्डक इञ्जेक्शन के द्वारा पहुँचा देते हैं। थोड़ी ही देर में आत्मा ग़ायब होजाता है। तो क्या आत्मा सर्दी से डरकर भागता है?

किसी मनुष्य के शरीर में हम आवश्यकता से अधिक गर्मी पहुँचा देते हैं। क्षण भर में ही 'नैनं दहति पावकः' वाला आत्मा गर्मी से घबराकर चम्पत होजाता है। तो क्या गीता-कार का कथन मिथ्या है?

आस्तिकों का कथन है, कि इन्द्रियों के द्वारा आत्मा ही सब काम करता है, इन्द्रियाँ उसकी सहायता के बिना कुछ भी नहीं कर पातीं। ठीक। अब हम पूछते हैं, कि यदि किसी आदमी

को उसकी शक्ति से अधिक भाँग पिला दी जावे, तो वह चिल्लाने-बकने लगेगा या नहीं ? यदि हाँ, तो मानना पड़ेगा, कि उसका दिमाग़ ठीक काम नहीं करता। दिमाग़ स्वयं कुछ नहीं करता, वह तो आत्मा का साधन है। जिह्वा कुछ नहीं बोलती, वह भी आत्मा की साधन है। तो फिर मानना होगा, कि दो तोले भाँग से आत्मा पागल होउठा। यदि यह कहो, कि यह तो दिमाग़ का दोष है, तो वह पक्ष स्वयमेव खण्डन होजाता है, कि दिमाग़ आत्मा का साधन है। फिर तो विचार-शक्ति, आत्मा के अधीन नहीं, बल्कि मस्तिष्क के अधीन माननी होगी। इन्द्रियों का स्वामी आत्मा को न सिद्ध कर सकने पर, आत्मा की सिद्धि के लिये कोई छोटा भी प्रमाण शायद मुश्किल होपड़े। भाँगवाले की ही तरह पागल को भी समझना चाहिये। क्या पागल का आत्मा कुछ ख़राब होजाता है ?

क्लोरोफ़ार्म से बेहोश व्यक्ति का आत्मा कहाँ चला जाता है, जब कि पेट चीर डालने पर भी आत्मा को उसका पता नहीं लगता ? क्या तीन माशे क्लोरोफ़ार्म से आत्मा बेहोश होजाता है ? या शरीर से उसका सम्बन्ध छूट जाता है ?

उपरोक्त बातों से सिद्ध है, कि वास्तव में शरीर में तत्वों की ही प्रधानता है, आत्मा नामक कोई चीज़ है ही नहीं। जबतक तत्वों का मिश्रण ठीक है, तबतक शरीर में प्राण-शक्ति रहती है। ज्योंही कोई तत्व घटा-बढ़ा, त्योंही वह प्राण-शक्ति नष्ट होजाती है। इसी का नाम मृत्यु है। इस सरल-बात को न समझकर, लालबुझक्कड़ों ने यह मशहूर कर दिया, कि 'आत्मा' ही शरीर का प्राण है, उसका निकल जाना मृत्यु है। तिस पर मज़ा यह, कि आगेवाले सभी विचारकों तथा ग्रन्थ-लेखकों ने या तो आत्मा को स्वीकार करके अपना

राग गाया है, या आत्मा की तारीफ़ में। यदि किसी ने इस विषय का सच्चा-अन्वेषण किया भी, तो ढोंगियों के झुण्ड ने उसका मज़ाक उड़ा दिया।

वास्तव में, आत्मा है ही नहीं। उसका अस्तित्व सिद्ध करने के लिये, धर्म-ग्रन्थों के झूठ-गपोड़ों के सिवा कोई प्रमाण ही नहीं मिलता। ऐसी दशा में, कौन बुद्धिमान्-मनुष्य यह कहने की भूल कर सकता है, कि आत्मा भी कोई चीज़ है? यदि, जन्म-संस्कारों के कारण कोई कहे, कि आत्मा है, तो हम उसे चैलेञ्ज करते हैं, कि वह आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करे।

यहाँ, कोई यह शङ्का कर सकता है, कि जब तत्वों के मिश्रण से ही शरीर की स्थिति है, तो फिर मनुष्य मरने क्यों पाता है, डाक्टरलोग उसे बचा क्यों नहीं लेते? हम मानते हैं, कि यदि कोई डाक्टर वास्तविक-रोग को जान सके और यह भी जानता हो, कि किन तत्वों के पहुँचा देने से रोगी न मरेगा, तो वह डाक्टर रोगी को बचा सकता है। यही नहीं, शरीर के तत्वों की जो खोज वैज्ञानिकलोग कर रहे हैं, उसमें किसी दिन निश्चय ही ऐसी सफलता प्राप्त होजावेगी, कि लाश में न्यून-तत्वों का इंजेक्शन करके मुर्दों को भी जिलाया जा-सकेगा। यूरोप के एक डाक्टर ने, एक मरेहुए-कुत्ते के शरीर में इंजेक्शन करके, उसके दिल की धड़कन २४ घण्टे तक जारी रक्खी थी। आज, यदि इतनी उन्नति हुई है, तो कल यह भी होगा, कि औषधियों के द्वारा मुर्दे जिला दिये जावेंगे और तब संसार को यह बात सम्यक्प्रकारेण ज्ञात होजावेगी, कि हज़ारों-वर्षों से, आत्मा सम्बन्धी जिस चक्कर में हम फँसे थे, वह झूठ है, शरीर की स्थिति तो तत्वों के समुचित-मिश्रण पर आश्रित है। यदि, मिश्रण पर आश्रित न होती, तो अधिक गर्मी पाने

पर आत्मा भाग क्यों जाता ? हमारे मतानुसार, गर्मी अधिक पहुँचने पर तत्वों की समानता विगड़ गई और गर्मी ने शेष तत्वों को दवा लिया। इस तरह मिश्रण विगड़ा और प्राण-शक्ति नष्ट होगई। अब कोई आत्मार्थी बतलावे, कि किस कारण आत्मा गर्मी पाकर या सर्दी से घबराकर भाग जाता है।

आत्मा की कल्पना मिथ्या है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है, कि प्रत्येक धर्म ने अपने ढङ्ग पर उसका स्वरूप और स्थिति बतलाई है। यदि आत्मा सत्य होता, तो सारे संसार में उसकी अनुभूति समान ही होती। अग्नि सत्य है, अतः संसार के सभी मनुष्य उसे जलानेवाला और उसके सच्चे-स्वरूप में मानते हैं। अग्नि की ही तरह हवा, पानी, सूर्य आदि को भी लोगों ने एक ही दृष्टि से देखा है। ऐसी स्थिति में, हम इसके लिये कोई कारण नहीं देखते, कि क्यों सारे संसार ने आत्मा को समानरूप से अनुभव नहीं किया। वास्तव में, आत्मा एक गपोड़ा है। उसका अस्तित्व तो था नहीं, जिसकी समझ में जो भी आया, उसने अपने अन्दाज से आत्मा का वही स्वरूप अपने चेलों को बतला दिया।

वेदान्ती कहते हैं, आत्मा और परमात्मा एक ही हैं, उनमें घटाकाश और बृहदाकाश का-सा भेद है। प्राणी के मरते ही आत्मा अनन्तब्रह्म में विलीन होजाता है। कोई कहता है, सब प्राणियों के आत्मा पृथक्-पृथक् हैं। मुसलमानों का आत्मा 'एक ही बार जन्म धारण करता और फिर क़यामत के दिन के इन्तिज़ार में क़ब्र में पड़ा रहता है। ईसाइयों का आत्मा मनुष्यों के अतिरिक्त पशुओं में होता ही नहीं। जैनियों का आत्मा ऐसी चीज़ है, जिसमें पाप-पुण्य के परमाणु चिपके रहते हैं और बिना ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार किये वह

आत्मा, अपने-आप स्वर्ग-नर्क और विभिन्न-योनियों को जाता रहता है। हमने तो आत्मा को देखा नहीं, इसलिये उसके विषय में कुछ नहीं जानते, लेकिन शायद जैनियों के प्रत्येक आत्मा के साथ एक-एक लिफ्ट लगा रहता है, जो उन्हें ऊपर-नीचे चढ़ाता-उतारता रहता है। कैसी गप्प है।

इस तरह से, सबने अपने-अपने ईश्वर की तरह अपने-अपने आत्मा की अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल कल्पना कर डाली है। आत्मा के लिये कोई सबूत तो है ही नहीं, कि कुछ साबित किया जासके, इसलिये जिसके जी में जो आया, उसने वही गपोड़ा जमा दिया। 'श्रद्धा' को सबूत की जरूरत नहीं होती, वह तो अन्धविश्वास का पर्यायवाची-शब्द बन गया है। लालबुझक्कड़ों ने कहा और भक्तलोगों ने इस बात को मान लिया, कि आत्मा है।

प्रमाण के अभाव में यह सिद्ध है, कि वास्तव में आत्मा कोई चीज है ही नहीं। हम ऊपर बतला चुके हैं, कि तत्वों के समुचित-मिश्रण से प्राणशक्ति उत्पन्न होती है, जिससे शरीर जीवित रहता है और मिश्रण बिगड़ते ही प्राणशक्ति नष्ट होकर मृत्यु होजाती है।

हमारा, पाठकों से विनम्र-अनुरोध है, कि वे लालबुझक्कड़ों की बातों पर विश्वास कर लेने की आदत छोड़कर बुद्धि से आत्मा के सम्बन्ध में विचार करें। उस समय उन्हें मालूम होजावेगा, कि ईश्वर की ही तरह आत्मा भी चण्डूखाने की गप्प है। वास्तव में, वह एक खाली-दिमाग की कल्पना है और कुछ नहीं।

पुनर्जन्म क्या है ?

जब, अछेद्य, अभेद्य और अदाह्य आत्मा की कल्पना लालबुझक्कड़ों ने की, तब यह प्रश्न पैदा हुआ, कि मृत्यु के पश्चात् यह आत्मा कहाँ जाता है ? यह प्रश्न भी अत्यन्त टेढ़ा था। लालबुझक्कड़ लोग इस प्रश्न का क्या उत्तर देते ? लेकिन, अपने नियम के अनुसार यदि वे कुछ उत्तर न देते, तो भक्तों की श्रद्धा जाती थी। इसलिये उन्होंने चटपट कह दिया, कि यह आत्मा मृत्यु के पश्चात् दूसरा-जन्म ग्रहण करता है।

मृत्यु से पूर्व और मृत्यु के पश्चात् की स्थिति के सम्बन्ध में, कोई विज्ञान कुछ भी नहीं जानता। लेकिन लालबुझक्कड़जी तो सब कुछ जानते हैं न, इसलिये संसार के सारे विज्ञान से आगे बढ़कर उन्होंने पुनर्जन्म का फ़तवा दे दिया और अन्ध-श्रद्धालु-भक्तों ने आँख बन्द करके उसे मान भी लिया। किसी भले-आदमी ने यह न पूछा, कि आख़िर इसके लिये सबूत क्या है ? जब आत्मा का ही अस्तित्व नहीं है, तब क्या पुनर्जन्म के राग अलापना, बाँझ के लड़के की शादी करने से कम झूठ है ?

पुनर्जन्म के सम्बन्ध में, जो बे-सिर-पैर की युक्तियाँ दी जाती हैं, उनका खण्डन करने से पूर्व हम, उन लाल-बुझक्कड़ों के प्रतिनिधि तथा उनके मत को शब्दजाल बनाकर पुष्ट करनेवाले गीताकार के कथन की संक्षिप्त-जाँच करेंगे। आत्मा के सम्बन्ध में, गीता एक प्रामाणिक-ग्रन्थ माना जाता

है। लेकिन, उसमें भी आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करके केवल उसके गुणों का वर्णन और पुनर्जन्म का पचड़ा गाया है। लोगों को धोखा देने के लिये, गीताकार ने देखिये तो कितने सुन्दर-शब्दों में पुनर्जन्म का वर्णन किया है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

(अ० २ श्लो० २२)

अर्थात्—जिस तरह से मनुष्य पुराने-वस्त्रों को छोड़कर नये-वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार से यह आत्मा जीर्ण-शरीर को छोड़कर दूसरी और नई-देह धारण करता है।

कैसा सुन्दर-चकमा है ? पुराने-कपड़े छोड़ो या शरीर छोड़ो, दोनों समान ही हैं। कोई पूछे, कि जब आत्मा नया-शरीर धारण करने को पुराना-शरीर छोड़ता है, तब वह मृत्यु से ऐसा घबराता क्यों है, कि कोई भी जीव मरना तो चाहता ही नहीं। यही नहीं, बालकों और युवकों के शरीर को यह आत्मा, हार्टफेल होते समय क्यों छोड़ भागता है ? क्या उनके शरीर जीर्ण होजाते हैं ? कदापि नहीं। इसके अतिरिक्त, गीताकार के इस गपोड़े को सिद्ध करने के लिये, कि इस शरीर की मृत्यु के समय, आत्मा नामक कोई चीज़ उससे निकलकर किसी दूसरे शरीर में प्रवेश करता है, क्या प्रमाण है ? बिना किसी प्रमाण के हम उनकी इस बात को सत्य क्यों मान लें ?

गीताकार, वास्तव में अव्वल-दर्जे का चण्ट था। उस बहादुर ने खूब चालाकी से दूसरी जगह कह दिया है, कि—

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥
(अ० २ श्लो० २६)

अर्थात—हे अर्जुन ! यदि तू इस आत्मा को नित्य जन्मने और मरनेवाला माने, तो भी तुझे इसके लिये शोक न करना चाहिए।

मतलब यह, कि यदि तुम्हें आत्मा के उस वर्णन पर श्रद्धा नहीं है, तो भी काम चला लो। यदि, आत्मा के नित्य तथा पुनर्जन्म का कोई निश्चित-प्रमाण होता, तो क्या गीताकार इस तरह लापरवाही के साथ ऐसा कह सकते थे ? पहले तो आत्मा के खूब गीत गाये, लेकिन फिर यह सोचकर, कि शायद इसे इस कथा पर विश्वास न हो, यह भी कह दिया, कि "आत्मा का जन्म-मरण मानो तो भी......आदि।" प्रमाण होने पर तो जोर देकर कहा जाता, कि आत्मा है और उसका पुनर्जन्म होता है।

और भी तमाशा देखिये। जीवों के जन्म से पूर्व और मृत्यु के बाद की दशा के सम्बन्ध में गीताकार कैसी बढ़िया पैंतरे-बाजी से असली-बात को उपेक्षापूर्वक मंजूर करते हैं—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत !
अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥
(अ० २ श्लो० २८)

अर्थात्—हे अर्जुन ! जीवों के जन्म से पूर्व और मृत्यु के बाद की अवस्था अव्यक्त है यानी जानी नहीं जाती। केवल

जन्म के वाद और मृत्यु से पूर्व की ही दशा जानी जाती है। इसमें चिन्ता का क्या कारण है ?

ठीक तो है, हम भी तो यही कहते हैं, कि जन्म से पूर्व और मृत्यु के वाद जीव के अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं है और यही बात गीताकार भी कहते हैं, कि वे दोनों स्थितियाँ जानी नहीं जातीं। असल वात गीताकार ने भी मंजूर कर ली है, लेकिन अपने भक्तों को चक्कर में डालते हुए। कोई पूछे, कि हे महाराज! जव जन्म से पूर्व और मृत्यु के वाद की स्थिति आपके शब्दों में भी अव्यक्त है, तव उस पर विश्वास करने का साधन क्या है ? तो शायद गीताकार यही कह सकेंगे, कि चूँकि हम कहते हैं, कि पुनर्जन्म होता है, इसलिये वह होता है। जो लोग, आँखें वन्द करके ऐसी वातें मान सकते हैं, वे मानें ; किन्तु कोई भी विचारशील-मनुष्य, गीताकार की पुनर्जन्म सम्बन्धी गप्पों को, प्रमाण के अभाव में कभी स्वीकार ही नहीं कर सकता। अस्तु।

गीताकार की ही भाँति, अन्य सभी पुनर्जन्मवादी-धर्म-शास्त्रों ने, पुनर्जन्म का पचड़ा गाया है, किन्तु किसी ने भी यह प्रमाणित नहीं कर पाया, कि पुनर्जन्म होता है। सभी पुनर्जन्म के ढंग गाते हैं, सबूत की तरफ़ किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। भला गीताकार ने इस वात को स्वीकार तो कर लिया है, कि मृत्यु के वाद की स्थिति अव्यक्त है। लेकिन अन्यान्य शास्त्रकार तो केवल अपने जोर के वल पर उसे दूसरों से स्वीकार करवाने का प्रयत्न करते हैं। यदि, आज वे होते, तो शायद डण्डे के वल पर भी लोगों से पुनर्जन्म स्वीकार करवाते।

संसार में, शायद एक मुसलमानी-धर्म ही ऐसा है, जो पुनर्जन्म को नहीं मानता। लेकिन, वह एक ऐसा गपोड़ा वताता

है, जो पुनर्जन्मवादियों से भी एक क़दम आगे बढ़ जाता है। इस्लाम कहता है, कि सब रूहें अल्लाहताला के हुक्म से क़यामत तक के लिये क़ब्र में पड़ी रहेंगी। जब उनसे कोई यह पूछता है, कि आखिर अल्लाह का ऐसा हुक्म क्यों है ? तो वे बेचारे आँख बन्द करके यही कह देते हैं, कि "अल्लाह की मर्ज़ी ! वह ख़ालिक है, मालिक है, उसके जी में जो आता है, सो करता है। किसी को उसके काम में ऐब निकालने का क्या हक़ हासिल है ?"

मुसलमानों के नज़दीक तो शङ्का करना या किसी ख़ुदाई-हुक्म का कारण पूछना कुफ़ का लक्षण है। ऐसी दशा में, वे बेचारे इस अधाधुन्ध-ख़ुदाई के विषय में क्या बतला सकते हैं, जब ख़ुद उन्होंने ही नहीं जाना है। ख़ैर।

अब, हम पुनर्जन्मवादियों से यह पूछते हैं, कि यदि वास्तव में पुनर्जन्म कोई वस्तु है, तो आत्मा तथा पुनर्जन्म के विषय में क्या प्रमाण हैं और वे प्रमाण आजतक संसार के सामने क्यों नहीं लाये गये ? किसी भी धर्मग्रन्थ ने उनका विवेचन क्यों नहीं किया ?

पुनर्जन्मवादियों की ओर से एक यह शङ्का की जाती है, कि यदि पुनर्जन्म नहीं होता, तो एक व्यक्ति के धनी और सुखी तथा दूसरे के निर्धन होने का क्या कारण है ? इसके उत्तर में हम यह बात कहेंगे, कि धनी या निर्धन होना पुनर्जन्म का कारण नहीं है। इसका कारण हमारी आर्थिक-व्यवस्था है, जिसके बल पर कोई व्यक्ति धनी होजाता है और शेष लाखों-मनुष्य भूखों मरते हैं। जो जितना भी चालाक तथा दुस्साहसी है, वह अनुकूल-परिस्थिति पाने पर उतना ही अधिक धन अपने क़ब्ज़े में कर लेगा। अमेरिका

ने अपार धन-माल इकट्ठा कर रक्खा है, भारतीय भूखों मर रहे हैं। तो क्या सभी पुण्यात्मा अमेरिका में और सभी पापी भारत में पैदा होते है? कदापि नहीं। अमेरिकन चालाक, परिश्रमी और साहसी हैं, हमलोगों में इन गुणों की कमी है। दूसरे, हमारी आर्थिक-व्यवस्था भी ऐसी अस्तव्यस्त है, कि वह दूसरों को लाभ पहुँचाती है, हमें नहीं। आर्थिक-व्यवस्था ठीक होजाने पर सम्पत्ति का समान-बँटवारा होगा और तब एक के धनी और लाखों के दीन होने की नौबत न आवेगी। रूस की आर्थिक-व्यवस्था इसका प्रमाण है।

उपरोक्त विवेचन से सिद्ध है, कि एक मनुष्य के सुखी और दूसरे के दुःखी होने का कारण आर्थिक-दुर्व्यवस्था है, पुनर्जन्म कदापि नहीं। यदि पुनर्जन्म के कारण कोई मनुष्य धनी अथवा ग़रीब होता, तो वह जीवनभर उसी स्थिति में रहता। यह न होने पाता, कि एक ग़रीब मौक़ा पाकर करोड़पति और एक करोड़पति ज़रा-सी प्रतिकूल-स्थिति आते ही कंगाल या दिवालिया होजाता।

दूसरी शङ्का, जो पुनर्जन्मवादियों की ओर से की जाती है, वह यह है, कि यदि पुनर्जन्म नहीं होता, तो क्या कारण है, कि एक मनुष्य जन्म से ही बीमार पैदा होता है या अपने जीवन में अधिकतर बीमार रहता है और दूसरा मनुष्य खूब-तन्दुरुस्त होता है?

इसके उत्तर में भी हम यही कहेंगे, कि यह पुनर्जन्म का कारण नहीं है। शरीर-शास्त्रवेत्ताओं का कथन है, कि शरीर की रचना पिता के वीर्य और माता के रज के आधार पर होती है। जब माता-पिता की उपरोक्त वस्तुएँ दूषित होंगी, तब बालक स्वयमेव रोगी उत्पन्न होगा। इसके बाद, बालक

माता-पिता की असावधानी के कारण तथा वयस्क अपनी असावधानी के कारण बीमार होते एवं दुःख पाते हैं। अयुक्त आहार विहार करनेवाले सज्जन यदि बीमार हों, तो इससे पुनर्जन्म कहाँ सिद्ध होता है। एक दिन शक्ति से अधिक भोजन कीजिये, दूसरे दिन अजीर्ण अपने-आप होजायेगा। सारांश यह, कि जिनके रहन-सहन का ढंग अनियमित है, वे ही बीमार रहते हैं, नियमित-जीवनवाले से बीमारी दूर रहती है।

ठीक इसी तरह से अन्यान्य बातों के विषय में भी समझना चाहिये। यह ध्यान रखने की खास तौर पर जरूरत है, कि सफलता या असफलता पूर्वजन्म के कारण नहीं, बल्कि पात्र की योग्यता तथा परिस्थिति की अनुकूलता-प्रतिकूलता पर निर्भर है। अस्तु।

पुनर्जन्म के सम्बन्ध में, कहीं-कहीं चण्डूखाने की-सी ये गप्पें भी सुनी जाती हैं, कि अमुक बनिया अमुक ब्राह्मण के यहाँ पैदा हुआ है और अपने पूर्वजन्म की कथा बतलाता है। अमुक कलवार का लड़का कहता है, कि मैं पूर्वजन्म में अमुक नाई था—आदि। एक बार तो किसी समाचारपत्र के संवाद-दाता ने अपने पत्र को लिखा था, कि अमुक जगह एक लड़के ने अपने पूर्वजन्म की कथा एक डिप्टी-कलेक्टर से कही और डिप्टी साहब ने उसकी बात पर विश्वास भी कर लिया। यदि यह समाचार सत्य हो, तो सबसे अधिक दया के पात्र वे डिप्टी-कलक्टर ही हैं, जो एक विद्वान् होकर भी ऐसे झाँसे में फँस गये। सम्भव है, कोई बेचारे बूढ़े-ठूढ़े रहे हों, पुराने आदमी भोले होते हैं।

हम पूछते हैं, कि यदि इस तरह किसी को पिछले-जीवन

की बात याद रह सकती है, तो क्या कारण है, कि भारत के शेष तैंतीस-करोड़ मनुष्यों को वह याद नहीं रही? जो सत्य है, वह तो सबके लिये समानरूप से सत्य ही होना चाहिये। क्या ऐसे छोकरों में ही वह शक्ति थी? और बड़े-बड़े प्रतिभाशाली-बालक पैदा हुए, किन्तु किसी ने भी आज तक ऐसा क़िस्सा क्यों नहीं कहा?

कुछ दिन पूर्व, देहात में हमने एक यह गपोड़ा उड़ते सुना था, कि अमुक जगह एक गाय के लड़की पैदा हुई है और वह कहती है, कि बारह-वर्ष तक, पानी की एक भी बूँद न पड़ने दूँगी। बेचारे भोले-भाले देहाती, इस गप्प पर विश्वास करके घबराते थे। इस गप्प में तथ्य क्या था, यह तो सभी जानते हैं।

यदि, लोग ऐसी बातों पर विश्वास कर सकते हैं, तो क्या पिछले-जन्म की कथा कहनेवाले लड़के की कल्पित-बात पर विश्वास नहीं कर सकते, जब कि पुनर्जन्म का पचड़ा उनके सामने मौजूद ही है? किसी दोस्त ने झूठमूठ उड़ा दी और सबने उसे मान लिया, अख़बारों में भी छपवा दिया। फिर भले ही किसी चगट ने, किसी उद्देश्य-विशेष से उस लड़के को यह सारा क़िस्सा सिखा दिया हो।

पाठकों से हमारा अनुरोध है, कि वे ऐसी झूठी-बातों पर कदापि विश्वास न करें। आज-कल, दस-बीस वर्ष पूर्व खोये हुए लड़के के स्थान पर, एक साधु के आकर वह लड़का बनने के बहुत-से मामले देखे गये हैं। जिस तरह से वह चालाकी है, उसी तरह इसे भी समझना चाहिये। जब ऐसा कोई मामला सामने आवे, तो वह लड़का जिसका आत्मा बनता हो, उसके बालसाथियों के द्वारा, जीवन की विभिन्न-घटनाओं

पर आड़े-टेढ़े प्रश्न करवाइये, बस सारा ढोंग फ़ौरन ही खुल जावेगा।

आत्मा नामक कोई वस्तु संसार में नहीं है, तब पुनर्जन्म होगा किस वस्तु का ? आत्मा की कल्पना के साथ यह ढोंग आवश्यक है। वास्तव में पुनर्जन्म के लिये चण्डूख़ाने की गप्पों के सिवा कोई प्रमाण नहीं मिलता। जब प्रमाण ही नहीं है, तब केवल धर्म-शास्त्रों के लेखों या धर्माचार्यों के लम्बे-लम्बे गपोड़ों पर हम क्यों विश्वास करें ?

हम, संसार के सभी पुनर्जन्मवादियों को चैलेञ्ज करते हैं, कि यदि पुनर्जन्म कोई वस्तु है, तो उसे साबित कीजिये। केवल श्रद्धा-श्रद्धा की दुहाई देने से काम नहीं चल सकता। यदि उसके पक्ष में कोई प्रमाण नहीं है, तो अभाव प्रमाण में हमारा पक्ष सत्य सिद्ध होता है, कि पुनर्जन्म केवल ढकोसला है।

भूत-प्रेत और देवी-देवता.

आत्मा और पुनर्जन्म की कल्पना होने पर, यह प्रश्न पैदा हुआ, कि प्राणी मरते ही दूसरा-जन्म ग्रहण करता है, या बीच में कहीं रुकता भी है।

प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में यदि लालबुझक्कड़जी अपनी प्रतिभा का उपयोग न करते, तो फिर उनकी तारीफ़ ही क्या थी? यदि वे सीधी तरह कह देते, कि प्राणी मरते ही दूसरा जन्म ग्रहण करता है, तो सब मज़ा ही बिगड़ जाता था। इसलिये उन्होंने एक और नया-गपोड़ा रचा, कि यह जीव मरकर कम-से-कम दस-दिन और अधिक-से-अधिक हज़ारों-वर्ष तक—अपनी-अपनी करणी के अनुसार—प्रेत-योनि में निवास करता है।

इस उत्तर में, उनका उद्देश्य भले ही अपना रौब जमा रखना-मात्र हो, लेकिन संसार का इतिहास बतलाता है, कि इस कल्पना ने मानव-जाति का कितना भयङ्कर-अहित किया है। छोटे-छोटे बच्चों से लगाकर सौ-सौ साल तक के बूढ़े सब इस कल्पना को सत्य मानते और इतने भयभीत रहते हैं, कि एक पत्ता खटकते ही उन्हें भूतों की फ़ौज दिखाई देने लगती है। यह भूतवाद, हमलोगों की जन्मघुटी के साथ पिला दिया जाता है और जीवनभर बिना भूत देखे, कहीं सन्देह होजानेमात्र से लोग भूत-भूत जपते रहते हैं।

अपढ़लोग तो भूत-प्रेत मानते ही नहीं, बल्कि उनकी पूजा भी करते हैं। लेकिन, हम जब बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोगों को

भूत-प्रेत के क़िस्से गाते देखते हैं, तब अक्ल चक्कर काट जाती है। ऐसे लोगों में, खास तौर पर प्रोफ़ेसर रामदासजी गौड़ एम० ए० का नाम लिया जासकता है। आप, बड़े भूतवादी हैं। अपने पक्ष की पुष्टि में, आपने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख भी लिखे हैं। प्रमाण में, आप सब बीमारियों का कारण भूत-बाधा को ही मानते हैं और वह भी एक की नहीं। आपको ऐसे-ऐसे मरीजों का इलाज करवाना पड़ा है, जिन्हें दस-दस और बीस-बीस भूत दबाये थे। पाठक देखें, कि भूतों में अत्यधिक विश्वास होने के कारण प्रोफ़ेसर साहब जैसा विद्वान्-व्यक्ति भी कैसा धोखा खासकता है। तर्कहीन-श्रद्धा के परिणाम का इससे सुन्दर-उदाहरण और क्या होसकता है ?

उक्त प्रोफ़ेसर साहब की ही तरह के श्रद्धालु-लोगों ने, प्रारम्भ में इस कल्पना को वास्तविक माना था। उन श्रद्धालुओं में से किसी ने भी यह तर्क न किया, कि यदि भूत-प्रेत कोई वस्तु है, तो वह हमें दिखाई क्यों नहीं देती ? हम, प्रत्येक पारलौकिक-विषय को देखते हैं, कि वह गुप्त ही है। किसी को उसका ज्ञान तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि, प्रत्यक्ष-वस्तु में तर्क और परीक्षण होसकता है तथा लालबुझक्कड़जी की पोल तभी तक ढँकी रहती है, जबतक वह तर्क और परीक्षण की कसौटी पर न कसी जावे। यही कारण है, कि अज्ञानी-मनुष्यों को धोखा देने के लिये, सब ऐसी चीजें बतलाई गईं, जिनकी छाया के अस्तित्व का भी कहीं पता नहीं लगता।

ऐसी ही वस्तुओं में से, भूत-प्रेत भी एक है। जब, आत्मा के अस्तित्व के लिये ही कोई प्रमाण नहीं है, तब भूत-प्रेत पैदा ही कहाँ से होंगे ? जब जड़ ही नहीं है, तब ये सब ढकोसले चलेंगे कैसे ? जिस तरह से ईश्वर, आत्मा और पुनर्जन्म खयाली

पुलाव हैं, ठीक इसी तरह से इस भूतवाद को भी समझना चाहिये।

जन्मजात-संस्कारों के कारण, अँधेरे में एक पत्ता खटकता देखकर हमें भूत का सन्देह होजाता है। किसी हिस्टीरिया के मरीज़ को ऊटपटाँग बकते या उछलते-कूदते देखकर हमें यह विश्वास होजाता है, कि इसे भूत की ही बाधा है। किसी बड़े और सूने-मकान की दूसरी-मंज़िल पर जहाँ बड़े-बड़े चूहे दौड़े और हमें उनकी आहट सुनाई दी, तहाँ हमें यह विश्वास होजाता है, कि निश्चय ही इस मकान में भूत है। अजीर्ण के कारण बुरे-स्वप्न देखकर जहाँ कोई नींद में चिल्ला उठा, तहाँ भूतवादी फ़तवा दे देते हैं, कि निश्चय ही इसे भूतबाधा सताती है। जल्दी किसी मांत्रिक के पास जाओ और दो-लौंगें फुंकाकर हाथ में बाँध दो। सारांश यह, कि पद-पद पर हमें भूत का ही सन्देह होता है।

देहात के कुछ अपढ़ और बूढ़े-बूढ़े तथा झूठ बोलने में दक्ष लोगों को हमने भूतों के क़िस्से कहते सुना है। उनसे पूछने पर वे अब भी बतलाते हैं, कि मैं अमुक खेत में रात को सोया था, इतने में भूत आगया और मुझसे कुश्ती लड़ने लगा। दो घण्टे तक मेरी उससे बराबर कुश्ती हुई। इस बीच में उसे क्षण-क्षणभर पर पटकता और हर बार वह ग़ायब होकर फिर मुझसे लिपटता। आख़िर, मैंने जब हनुमानचालीसा पढ़ना शुरू किया, तब वह भाग गया। कोई कहता है, मेरे लड्डू देखकर उसका जी ललचाया और वह अपनी ग़ायब होजानेवाली शक्ति सहित मुझसे तबतक लड़ता रहा, जबतक मैंने उसे आधे-लड्डू दे नहीं दिये। शहर के दकियानूसलोग और ही ढंग के क़िस्से गाते हैं। कोई कहता है—अमुक बाग

में रात को भूतों की महफ़िल जमती है, तबला खटकता है, रण्डी नाचती है और शहर से मिठाई जाती है। किसी को किसी कोठी में भूत दीख पड़ता है और किसी की दृष्टि किसी के हाते में भूत पड़ता है। मतलब यह, कि सब स्थानों पर भूतों के भक्त हैं और वे लोगों के सामने भूतों के क़िस्से गाते हैं।

ऐसे लोगों से, जब कोई भला-आदमी कहता है, कि चलिये हम दस-आदमी चलते हैं, आप हमें उस भूत के दर्शन करवाइये, तो वे चटपट कहने लगते हैं, कि इस तरह भूत नहीं मिला करता। वह तो जिसे मिल जाता है, उसे ही मिलता है। कभी-कभी, यदि कोई भूतवादी भूत दिखाने को तयार भी होता है, तो वह अपने दो-चार लुंगाड़े-साथियों को या एकाध को कहीं छिपाकर दर्शक को उनसे डरवा देता है और इस तरह उससे भी भूत का अस्तित्व स्वीकार करवा लेता है। हमारे एक नास्तिक-मित्र को—जो एक देशी-राज्य में रहते हैं—एक ऐसे ही भूतभक्त से काम पड़ा। वह एक बूढ़ा-मुसलमान था और लोगों की भूतबाधा दूर करता था। जब हमारे मित्र ने उससे कहा, कि भूत कोई चीज़ नहीं है, तब वह इस बात के लिये तयार होगया, कि मसान जगाकर वह भूत का होना सिद्ध करेगा। हमारे मित्र ने यह शर्त रक्खी, कि हम अपने साथ चार-बन्दूकें ले चलेंगे और भूत को देखते ही उसे छर्रे से घायल करेंगे। इसमें यदि कोई आदमी—जो नक़ली-भूत बना हो—घायल होजाय, तो इसकी सारी ज़िम्मेदारी भूतज्ञ महाशय पर होगी। इस शर्त के सुनते ही बूढ़े-मियाँ हीं-हीं करने लगे और बन्दूक़ लेजाने या चलाने की शर्त पर मसान जगाकर दिखाने से साफ़ इनकार कर दिया।

पाठकगण सोच सकते हैं, कि इसमें भूतवादियों की कितनी कमज़ोरी है। यदि भूत सत्य है, तो वह त्रिकाल में सत्य ही होना चाहिये। वह जहाँ रहता है, वहाँ यदि बीस या सौ आदमी जावें, तब भी उसे अपने प्रत्यक्ष-स्वरूप में दिखाई देना चाहिये। सिंह सत्य है, इसलिये वह जंगल में सबको दीखता है। मृग, सियार और लोमड़ी भी सत्य है, अतः वह सब को दीखती है। अग्नि, पानी, सूर्य, चन्द्रमा और तारे आदि सब चीज़ें सत्य हैं, अतः वे सदैव और सबको समान-रूप से दीखते हैं। ऐसी दशा में कोई कारण नहीं, कि भूत सत्य होकर भी हज़ार-दो-हज़ार में से किसी एकाध को ही दिखाई दे। और वह भी किसी प्रामाणिक-आदमी को नहीं, बल्कि ऐसे आदमी को, जिसकी बात पर कभी विश्वास ही नहीं किया जासकता। जब, भूत किसी पढ़े-लिखे और समझदार तथा तार्किक-व्यक्ति को नहीं दिखाई देता, तब यह तो सभी बुद्धिमान् सोच सकते हैं, कि वह एक गपोड़ा है। भूत के असत्य होने का एक और भी प्रमाण है। वह यह, कि वह सदैव रात्रि के समय और अकेले तथा डरपोक-आदमी को ही दिखाई देता है। वेदान्तीलोग सदा चिल्लाते ही हैं, कि अन्धकार में रज्जु से सर्प का भ्रम होजाता है। ठीक इसी तरह अँधेरे में लोगों को विभिन्न-वस्तुओं से भूत का भ्रम हो-जाता है। बाग में, किसी लोमड़ी के चलने से पत्ते खड़खड़ाये। अन्धकार होने के कारण हम यह तो देख नहीं सके, कि वहाँ लोमड़ी है, संस्कारवश हमारे दिल में फ़ौरन यह भावना पैदा होगई, कि भूत चल रहा है। जंगल में कोई व्यक्ति लालटेन लेकर चल रहा है। जब-जब लालटेन झाड़ी की ओट में होजाती है, वह हमें नहीं दीखती। झाड़ी की ओट से निकलते

ही वह फिर दिखाई देने लगती है। हम निर्णय कर लेते हैं, कि अगिया-बैताल दौड़ा जाता है, जिसका पलीता कभी जलता और कभी बुझता है। इसी तरह की और भी अनेक परिस्थितियों में लोगों को अकारण ही भूत का भ्रम होजाता है। लेकिन, ये सभी बातें प्रायः रात्रि में अथवा अन्धकार में होती हैं। भूत का अस्तित्व केवल कल्पना या दिल की संस्कारजन्य-कमजोरी है। वास्तव में भूत आजतक न तो देखा गया है, न इसकी आशा ही है। कारण, कि जब भूत का आधार आत्मा ही सिद्ध नहीं होता, तो भूत कैसा?

यदि कोई सज्जन भूत सिद्ध कर सकें, तो संयुक्तराज्य-अमेरिका का सुप्रसिद्ध पत्र साइण्टिस्ट (Scientist) उन्हें एकलाख-डालर या साढ़ेतीनलाख-रुपये के लगभग पुरस्कार देगा। इस पुरस्कार की घोषणा हुए कई वर्ष बीत गये, लेकिन आजतक किसी ने यह इनाम नहीं प्राप्त किया। हमारे भारतवर्ष में भूतों का आधिक्य होगा, क्योंकि यहाँ सारे संसार से अधिक भूतवादी रहते हैं। क्या हम आशा करें, कि कोई भारतीय-भूतवादी या उनके आचार्य प्रो० रामदासजी गौड़, भूत का अस्तित्व सिद्ध करके उपरोक्त पुरस्कार प्राप्त करेंगे? कभी नहीं। जब भूत है ही नहीं, केवल ज़बानी-गप्पें ही उड़ानी हैं, तब सिद्ध क्या खाक करेंगे?

भूतों का वर्णन, या तो वे लोग करते हैं, जो तर्कहीन होकर अज्ञान में पड़े हैं, या वे लोग, जो इस ढोंग की ओट में अपना पेट पालना चाहते हैं। दूसरे प्रकार के लोगों की इस विषय में प्रधानता है। यदि वे ऐसा न करें, तो लोगों को 'भूत का फेर है' कहकर बीमारी के समय कैसे ठग सकें? वे तो प्रत्येक बीमारी में भूत का हाथ बतलाना ही चाहेंगे।

ऐसे लोगों के कारण ही परम्परा पर भूत का आडम्बर व्यापक-रूप धारण करता है। लोगों को, ऐसे लालबुझक्कड़ों से सावधान रहना चाहिये और सदा ध्यान रखना चाहिये, कि प्रत्येक बीमारी रोग के कारण होती है, भूतों के कारण नहीं। क्योंकि, भूत हैं ही नहीं। अस्तु।

भूत-प्रेतों की कल्पना की ही तरह देवी-देवताओं की कल्पना भी बड़ी विचित्र है। और-और धर्मों में चाहे थोड़े भी हों, लेकिन हमारे हिन्दू-धर्म में तो पूरे तैंतीस-करोड़ देवता हैं। जब देवता ही ३३ करोड़ हैं, तब कम-से-कम इतनी ही देवियाँ भी होंगी। दोस्तों ने कल्पना भी की, तो थोड़ी नहीं! आखिर जब मन से ही खाना है, तो चने क्यों चबाये जावें, लड्डू क्यों न उड़ें? इन ६६ करोड़ अज्ञात-जीवों के नाम की कोई लिस्ट भी तो लालबुझक्कड़ों के प्रतिनिधियों के पास नहीं है। अफ़सोस !

जब, इन सब ढोंगों पर विचार किया जाता है, तो बुद्धि काम नहीं देती। मर्ज़ बहुत पुराना होचुका है, इसलिये सैकड़ों-बीमारियों ने उसका साथ कर लिया है। ईश्वरवाद के ढोंग की यह पूँछ भी बड़ी ज़बरदस्त है। पैर-पैर पर और प्रत्येक रँगा हुआ पत्थर देवता है। भैरों देव हैं, जो कुत्ते पर चढ़कर चलते हैं। शीतलादेवी सात बहनें हैं, जो गधे पर सवार होती हैं। शेष देवियाँ सिंह पर सवार होती हैं। लेकिन, सभी देवियाँ बलि अवश्य लेती हैं। बंगाल की कालीजी की जीभ रक्तपान के लिये सदैव लपलपाती रहती है। शेष प्रान्तों की अन्य देवियाँ भी मांस तथा रक्त की प्यासी रहती हैं। गुजरात की अम्बादेवी की भी ऐसी ही मनोवृत्ति है। इन सब देवियों के होते हुए मजे की बात यह है, कि

कालीजी बंगाल के लोगों को ही कष्ट देती हैं और बंगाली ही उनसे अत्यधिक-भयभीत रहते हैं एवं अम्बाजी से गुजरातियों को अधिक भय है। न कालीजी गुजरातियों से बोलें, न अम्बाजी बंगालियों से। शायद देवियों की यह प्रकृति है, कि वे अपने भक्तों को ही खाने दौड़ती हैं। कैसी विडम्बना है !

वास्तव में, ईश्वर की ही तरह देवी-देवताओं की कल्पना भी अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल लोगों ने करली है। मांस-भक्षियों के देवता विना मांस पाये सन्तुष्ट नहीं होते, वे तो जब भी कोप करते हैं, तब बकरा ही माँगते हैं। निरामिष-भोजियों के देवता लड्डू पाकर सन्तोष कर लेते हैं। गँजेड़ी-भँगेड़ियों के शंकर दम लगाकर या भाँग पीकर प्रसन्न होते हैं। शराबियों की देवी, शराब ही पीती है। सारांश यह, कि जिसकी जितनी अधम-मनोवृत्ति है, उसने उतने ही अधम-चरित्रवाले देवता की कल्पना की है। बलि-प्रदान की पाशविक-प्रथा, मनुष्यों की मनोवृत्ति से उत्पन्न हुई है, वास्तव में वह एक प्रकार का सिड़ीपन है। यदि बंगालियों के लड़के-बच्चे कालीजी को भैंसा चढ़ाने से जिन्दा रहते हैं, तो फिर आर्यसमाजियों के बच्चों को देवीजी कैसे छोड़ देती हैं, जब कि वे किसी को एक मुर्गा भी नहीं चढ़ाते ? इससे सिद्ध है, कि लोगों ने यह सब अपने मतानुसार कल्पना कर ली है। वास्तव में, देवी-देवतावाद केवल एक ढकोसला ही है।

इन सब देवी-देवताओं में से, दो-चार देवियाँ ही हिन्दुओं के यहाँ अधिक पूजी जाती हैं। कारण, कि वे बड़ी जालिम हैं और गुलामों की यह मनोवृत्ति होती है, कि वे जालिम को बहुत मानते हैं। शीतलादेवी की पूजा इसलिये की

जाती है, कि यदि वे प्रसन्न न रहेंगी, तो चेचक की बीमारी पैदा करके बच्चों को मार डालेंगी। दुर्गा की यदि सम्यक्-प्रकारेण पूजा न हुई, तो वे हैज़ा उत्पन्न करके सर्वनाश कर डालेंगी। इसी तरह, अन्य दो-एक ज़ालिम-देवियों की बड़ी प्रतिष्ठा है।

एक ओर तो लोग ईश्वर को संसार का कर्त्ता, पालक और संहारक मानते हैं तथा दूसरी ओर देवियों से प्राणों की भिक्षा माँगते हैं। सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात का है, कि वर्तमान ईश्वरवाद एक बे-पेंदी का लोटा है, उसको जिधर चाहो, लुढ़का लो। ईश्वर भी मारता है, देवियाँ भी संहारक हैं, भूत-प्रेत भी मार डालेंगे, चुड़ैलों और डाकिनों की दृष्टि पड़ने पर जीवन की कुशल नहीं है, तो फिर ईश्वरवाद का नियम क्या है? कोई एक संहारक नहीं है? जिसके जी में आवेगा, वही हमें मुर्गे की तरह हलाल कर डालेगा? कैसा अन्धविश्वास और ढोंग है! आश्चर्य!

अज्ञान में फँसे हुए मनुष्य, चेचक की बीमारी का समुचित-इलाज करवाने के बदले, कन्याओं को भोजन करवाते, शर्बत पिलाते या ब्राह्मणों को मिठाई खिलाते हैं। शायद उनका यह विश्वास है, कि इस तरह रिश्वत पाकर देवीजी का कोप शान्त होजावेगा और वे हमारे बालक को जीवित छोड़ देंगी। देवी-देवता के ढोंग में फँसे होने के कारण, भारत के हज़ारों बालक प्रतिवर्ष इसी तरह खो दिये जाते हैं। किसी ने आजतक यह नहीं सोचा, कि यदि यह रोग देवीजी के कोप के कारण होता है, तो क्या देवीजी रोग को पैदा करनेवाली और मनुष्य-भक्षिका-राक्षसी हैं?

. . . .

गवाँर-मनुष्य, होली के त्यौहार पर यानी चैत की शुरूआत में गुड़ की गुझिया तेल में तलकर खाते और बच्चों को खिलाते हैं। परिणामस्वरूप जब हैज़ा होजाता है, तब किसी डाक्टर की शरण लेने के बदले, देवीजी को शर्बत-मिठाई चढ़ाते या बकरे की मन्नत लेते हैं। उस समय, वे सीमातीत-दीनतापूर्वक रोगी के प्राणों की भिक्षा देवीजी से माँगते हैं। कभी यह नहीं सोचते, कि हमारी ही असावधानी के कारण इसके प्राण जारहे हैं। औषधि न पहुँचने के कारण रोगी चल देता और देवीजी मुफ़्त ही में शर्बत, मिठाई तथा प्रार्थना खाजाती हैं।

देवी-देवतावाद के ढोंग के दुष्परिणाम का इससे सुन्दर-प्रमाण और क्या होसकता है? भूतवाद की तरह यह भी एक बेहूदी-कल्पना है और केवल अज्ञानी या जन्मजात-संस्कारों के कारण अविचारपूर्वक इसे मानते रहनेवाले लोग ही इसके क़ायल हैं। लोगों को, इन सब ढोंगों से बचना और इनके दलालों से प्रमाण माँगना चाहिये। हमारा दृढ़-विश्वास है, कि संसार का कोई भी मनुष्य, भूत-प्रेत और देवी-देवता के लिये—आस्मानी गपोड़ों के सिवा—कुछ भी प्रमाण नहीं दे सकता। अस्तु।

भूत-प्रेतों की बाधा दूर करनेवाले लोग बड़ी-बड़ी बातें सुनाते और कोई-कोई तो बड़े-बड़े ब्रह्मराक्षसों तक को दूर करने का दम भरते हैं। ऐसे लोगों से हम पूछते हैं, कि यदि भूत कोई वस्तु है और मंत्र-शक्ति से उसे वश में किया जासकता है, तो फिर आजतक आपलोगों ने एकाध छोटा-मोटा भूत पकड़कर संसार के सामने, अपने मान्त्रिक-पींजरे में बन्द करके क्यों नहीं रक्खा? किसी अजायबघर में यदि इस तरह भूत रख दिया जाता, तो भूत के सम्बन्ध में शङ्का करने की

गुंजायश तो न रहती। जब शेर-चीते और गैंडा सब पकड़कर पींजरे में बन्द कर दिये जाते हैं, तो मन्त्र-शक्ति से भूत को वश करनेवालों के लिये क्या ऐसा करना असंभव है ?

यदि कोई यह कहे, कि भूत तो एक हवा है, जो पकड़ी नहीं जासकती, तो हम पूछते हैं, कि फिर वह कुश्ती किस तरह लड़ता है ? यदि उसमें शरीर धारण करने की शक्ति है, तो फिर क्या मंत्रवादियों का दबाव पड़ने पर वह इतना भी नहीं करेगा ?

वास्तव में भूत-प्रेत है ही नहीं, तो फिर यह सब किया किसके साथ जावे ? जो लोग झूठ बोलने के अभ्यस्त हैं और ऐसा करने में आनन्द अनुभव करते हैं, वे ही कहते हैं, कि भूत होता है और वह अमुक बाग या वृक्ष में रहता है। प्रमाण कुछ देते नहीं, केवल कहते भर हैं। जब कोई प्रमाण ही नहीं है, तब हम उनके कथन को सत्य क्यों समझें ?

हम, प्रत्येक पाठक से अनुरोध करते हैं, कि वे अपने जन्मजात-संस्कारों को ताक़ पर रखकर भूत-प्रेत और देवी-देवता के सम्बन्ध में सम्यक्-प्रकारेण अन्वेषण करें। खोज करने पर उन्हें अपने-आप मालूम होजावेगा, कि ये सब बातें केवल लोगों को ठगने या अपना रौब जमाये रखने के लिये गढ़ ली गई हैं, वास्तव में ऐसी कोई चीज़ कहीं है ही नहीं।

परलोक.

जब आत्मा, पुनर्जन्म आदि की कल्पना हुई, तब यह प्रश्न पैदा हुआ, कि आखिर यह आत्मा सदैव जीवन-मरण के चक्कर में ही फँसा रहता है, या कभी कुछ समय के लिये कहीं रुककर आराम भी करता है ?

इस प्रश्न के उत्तर में, लालबुझक्कड़ों ने फिर अपनी कल्पना-शक्ति का उपयोग किया और परलोक की कल्पना कर डाली। उस परलोक में भी स्वर्ग, नर्क, भुवर्लोक, मोक्ष आदि कई विभाग बतलाये। ये संस्कार, परम्परा पर दृढ़ होते-होते आज इस स्थिति में पहुँच गये हैं, कि प्रत्येक मनुष्य आँखें बन्द करके परलोक का अस्तित्व स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि उसे प्रत्येक-प्राणी के लिये अनिवार्यतः आवश्यक भी मानता है।

लालबुझक्कड़ों ने, गप्पों का ऐसा जाल बना दिया है और ऐसी सफ़ाई से सारा ढोंग रचा है, कि संस्कार से दबे हुए मनुष्य को कभी उसमें सन्देह करने को गुंजायश ही न रहे। अच्छे-कार्य करो, स्वर्ग तयार है। बुरे-कार्यों का फल भोगने नर्क जाना होगा। दोनों से छुट्टी पाने पर मोक्ष की प्राप्ति होसकती है, पहले नहीं।

इस गपोड़े के विषय में यदि कोई उनसे पूछे, कि इसके लिये प्रमाण क्या है, तो पूर्वनियमानुसार—सिवा शास्त्रों के लम्बे-चौड़े कथनों के—वे कोई प्रमाण ही नहीं दे पाते। जिस

तरह से अन्यान्य पारलौकिक-विषयों में केवल उनका कथन प्रमाण है, उसी तरह परलोक के विषय में भी है। मृतात्मा की, परलोक जाते समय और वहाँ पहुँचकर क्या-क्या गतियाँ होती हैं, इसके लिये हिन्दू-धर्म में 'गरुड़-पुराण' नामक एक पुराण-ग्रन्थ है। इस पुस्तक के कुछ अंशों को पढ़ने से यह बात निश्चित रूप से मालूम होजाती है, कि इसका लेखक कितनी अधम-मनोवृत्तिवाला, मनुष्यता का शत्रु और कैसा अव्वल-दर्जे का असभ्य था। दण्ड देने की जो-जो विधियाँ उपरोक्त पुराण में बतलाई गई हैं, उनकी कोई असभ्य-से-असभ्य मनुष्य भी कल्पना न कर पावेगा। ऐसी अधम-मनोवृत्तिवाले लेखक के लिखे हुए ग्रन्थ को भी जो लोग सत्य और प्रमाण मानते हैं, उनकी बुद्धि ही की बलिहारी है।

परलोक के विषय में, प्रधानतः स्वर्ग और नर्क की कल्पना सब धर्मों ने की है। इसलिये अन्य बातों को छोड़कर, पहले हम इन्हीं दोनों के विषय में विचार करेंगे।

हम, पहले बतला चुके हैं, कि ईश्वर, आत्मा और पुनर्जन्म आदि सब केवल मानसिक-कल्पनामात्र हैं। इनके अस्तित्व के लिये कोई प्रमाण नहीं है। जब, स्वर्ग-नर्क को जानेवाले आत्मा के अस्तित्व का ही कहीं पता नहीं है, तब स्वर्ग-नर्क है किसके लिये? आत्मा की ही तरह वह भी चण्डूखाने की गप्प है। फिर भी, प्रत्येक धर्म ने बड़े रोचक-शब्दों में इनका वर्णन किया है, अतः हम देखें, कि उन्होंने ऐसा क्यों किया है।

सबसे पहले स्वर्ग को ही लेते हैं। हिन्दू कहते हैं—स्वर्ग एक वह रमणीय-स्थान है, जहाँ पहुँचकर आत्मा सर्वशक्तिसम्पन्न तथा ऐश्वर्यसम्पन्न होजाता है। हजारों-लाखों वर्षों तक वहाँ रहकर तथा सुन्दर-सुन्दर देवांगनाओं का उपभोग करता हुआ

वह खूब सुख पाता है। इस स्वर्ग की प्राप्ति उसे होती है, जो धर्माचरण करता है और धर्माचरण वह है, जो हम करते हैं।

मुसलमान कहते हैं—जो लोग नबी पर ईमान लावेंगे और शरीयत के अनुसार—यानी जैसा हम करते हैं—काम करेंगे, उन्हें बहिश्त मिलेगा। उस बहिश्त में अंगूर की शराब की दरिया बहती है, सैकड़ों हूरें और ग़िल्मे उपभोग के लिये मिलेंगे और सब तरह से मौज-मजे हैं।

जैनी कहते हैं—स्वर्ग के देवताओं की लाखों-वर्ष की आयु और सुन्दर-काया होती है। अनेक युवती तथा सुन्दरी-देवांगनाएँ उपभोग को मिलती हैं और सबसे बड़ी बात यह, कि देवताओं के पास अपार-धन होता है, जिसे वे अपनी इच्छानुसार व्यय करते और अपने कृपापात्र को रोज़ करोड़ों की सम्पत्ति दे सकते हैं—जैसे कि कुछ देव दे चुके हैं। देवों को अपार-शक्ति भी प्राप्त होती है।

ईसाईलोग भी अपने स्वर्ग की तारीफ़ में ऐसी ही गप्पें मारते हैं।

अब, प्रत्येक विचारशील-व्यक्ति समझ सकता है, कि सब धर्मों की इस काल्पनिक-माया में उनकी मनोवृत्ति और रुचि के अनुकूल प्रलोभन से अधिक और क्या है? हिन्दुओं को ऐश्वर्य पसन्द है, अतः वे स्वर्ग में हुकूमत बतलाते हैं। मुसलमानों को हूर, ग़िल्मा और शराब चाहिये, जो स्वर्ग में खूब मिलती है। जैनियों को धन चाहिये, अतः स्वर्ग में अपार-सम्पत्ति पर क़ब्ज़ा मिलेगा।

मतलब यह, कि पहले हम नकटे के ईश्वरदर्शनवाली जो किंवदन्ती लिख आये हैं, वह यहाँ बिलकुल चरितार्थ होती है। अपना झुण्ड बढ़ाने के लिये, लोगों ने वे-वे प्रलो-

भन दिखलाये हैं, जिनका यहाँ स्वप्न भी नहीं देखने को मिलता। लोग सोचते हैं, कि इस जन्म में यदि इन चीज़ों की प्राप्ति नहीं हुई है, तो कम-से-कम स्वर्ग में तो दिल भर ही लूँगा। इसलिये वे उन वस्तुओं की प्राप्ति के लिये, यानी स्वर्ग जाकर आनन्दोपभोग करने की इच्छा से, धर्माचार्यों के ढोंग में फँस जाते हैं। ऐसे प्रलोभन दिखलाकर, लोगों ने स्वर्ग को मानों एक विषय-सेवन का साधन बना लिया है। स्वर्ग जाने की इच्छा से भक्ति करनेवालों को लक्ष्य करके एक उर्दू शायर ने क्या ही अच्छा कहा है—

जन्नतपरस्त ज़ाहिद, क्या हक़परस्त है ?
हूरों पै मर रहा है यह, शहवतपरस्त है !

अर्थात्—स्वर्ग की इच्छा रखनेवाला यह पुजारी क्या ईश्वर-भक्त है ? नहीं, यह तो उन परियों के लोभ से वहाँ जाना चाहता है, अतः यह विषयों का दास है।

सारांश यह, कि स्वर्ग की कल्पना, मूढ़ों को अपने चंगुल में फँसाये रखने और उन्हें अपने पन्थ पर श्रद्धा रखवाने के लिये ढोंगी-धर्माचार्यों ने की है। असल में स्वर्ग नामक कोई चीज कहीं है ही नहीं, वह लालबुझक्कड़ों के ख़ाली-दिमाग़ की उपज है।

स्वर्ग की ही भाँति, नर्क के विषय में भी समझना चाहिये। नर्क की बेहूदा-कल्पना भी ऐसे ही ढोंगी-लोगों ने की है, जो अन्यान्य लोगों को डराकर अपने पन्थ पर चलाना चाहते थे। ईसाइयों के अनन्त-दण्ड, मुसलमानों के दोज़ख और हिन्दुओं के रौरवादि नर्कों का वर्णन पढ़ने से स्पष्ट ही मालूम होजाता है, कि ये सब अत्युक्तिपूर्ण-कल्पनाएँ केवल

बेचारे भोले-भाले लोगों को डराने के लिये ही की गई हैं। जिन लोगों ने, तात्कालिक अज्ञानी-समाज को फँसाने के लिये यह कल्पना की थी, उन्होंने इसके लिये कहीं और कुछ भी प्रमाण नहीं दिया है।

हम, अब भी उन लालबुझक्कड़ों के प्रतिनिधियों यानी धर्माचार्यों से पूछते हैं, कि स्वर्ग और नर्क के जो लम्बे-चौड़े वर्णन आपलोग करते हैं, उनके लिये आपके पास क्या प्रमाण है? यदि कोई प्रमाण नहीं है, तो केवल किताबी-गपोड़ों पर विश्वास करके हम यह कैसे मान लें, कि स्वर्ग-नर्क कोई वस्तु है?

ये सारी कल्पनाएँ झूठ हैं और अज्ञान की द्योतक हैं। लोगों को, इन सब प्रलोभनों तथा भय से बचना चाहिये। वास्तव में, ये चीजें हैं ही नहीं। संसार के किसी भी विज्ञान या 'अनुभवी-पुरुष' ने इन गपोड़ों का समर्थन नहीं किया, इसलिये ये सब मिथ्या हैं।

परलोक के विषय में, यों तो भागवत आदि ग्रन्थों में बड़े-बड़े गपोड़े लिखे मिलते हैं, लेकिन आधुनिक-ग्रन्थों में, इस विषय की पुष्टि करनेवाली एक भी पुस्तक न थी। अब, श्री व्ही० डी० ऋषि की कृपा से "सुभद्रा अथवा मरणोत्तर-जीवन" नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसमें परलोक-वाद तथा मृतात्माओं से बातचीत करने की गप्पें लिखी हैं। इस पुस्तक की भूमिका लिखी है—चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसाद शर्मा ने, जो कट्टर रामानुजीय हैं। दोनों ही सज्जनों ने मिलकर परलोक की सिद्धि बतलाने का प्रयत्न किया है, लेकिन किसी को भी सफलता नहीं मिली। जो पुस्तक हमारे सामने है, उसके प्रकाशक स्वयं श्री ऋषिजी हैं, लेकिन पूरा पता नहीं

छपा है। अन्यथा, हम पाठकों से, उपरोक्त पुस्तक मँगवाकर पढ़ने तथा इस बीसवीं-सदी के लालबुझक्कड़ों की लीला जानने का अनुरोध करते, कि किस तरह परलोकविद्या-विशारदों ने परस्पर धोखा खाया है। अब, हम उपरोक्त पुस्तक की संक्षिप्त-समीक्षा एवं श्री ऋषिजी के विश्वासों की आलोचना करेंगे।

श्री ऋषिजी की प्रथम-धर्मपत्नी के देहान्त पर आपको बड़ा दुःख हुआ और आप परलोकविद्या-विशारदों से उनका समाचार जानने को पत्र-व्यवहार करने लगे। इसी अन्वेषण ने ऋषिजी को परलोक-विद्या के गर्त्त में फँसाया है, जैसा कि आपने उस पुस्तक में लिखा है। आपके अन्वेषण का परिणाम यह हुआ, कि इँग्लैण्ड के एक परलोकवादी के द्वारा आपकी पत्नी ने कुछ समाचार भेजे और फिर स्वप्न में आपकी पत्नी से आपसे मुलाक़ात होती रही, जिसका पूरा-विवरण श्रीमती ऋषि सीयन्स (बैठक) में बतलाती थीं। ये वर्णन बड़े ही मज़ेदार हैं। इसके बाद आप इँग्लैण्ड गये, जहाँ आपको बतलाया गया, कि मीडियम (बीचवाले) के द्वारा आप अपनी पत्नी से बातचीत भी कर सकते हैं और आपको आत्मा के शब्द स्पष्ट सुनाई देंगे। कई मीडियमों ने आपकी पत्नी को देखा भी था, जिनकी बात पर श्री ऋषिजी छाती ठोककर विश्वास करते हैं। ख़ैर, ऋषिजी को आत्मा के शब्द सुनवाने का इन्तिज़ाम हुआ! ऋषिजी स्वयं लिखते हैं, कि ये प्रयोग अँधेरे में किये जाते हैं, क्योंकि अन्धकार के योग से आत्मा का शब्दोच्चार सुनाई देता है। अँधेरे-कमरे में कई सज्जनों सहित ऋषिजी बैठे और गाना-बजाना होजाने के बाद आत्मागाइड यानी बीचवाले ने ऋषिजी को सम्बोधित करके कहा, कि यहाँ एक भारतीय-आत्मा है, जो आपके पास ही खड़ा है। वह कहता है, कि मैं प्रसन्न हूँ। वह

आत्मा, तुमसे तुम्हारी भाषा में ही वातचीत करेगा। ऋषि महोदय को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई और वे मराठी-भाषा में बोलने लगे। इन प्रश्नों का उत्तर ऐसी बारीक-आवाज़ में दिया गया, जिसे ऋषिजी समझ न पाये। जब आपने आत्मा से ज़ोर से बोलने का अनुरोध किया, तब गाइड ने बतलाया, कि 'वह चला गया'। इसके बाद और लोगों ने बातचीत की, जिनके सम्बन्धी आत्माओं का शब्दोच्चार स्पष्ट था।

इसके बाद एक जगह आप लिखते हैं—"उक्त प्रयोग के समय मुझे बताया गया, कि वह मुझे छूना चाहती है। मेरी अनुमति मिलने पर मुझे प्रत्यक्षतः ऐसा प्रतीत हुआ, कि मानों कोई मेरे पैर छू रहा है। मेरी दाहिनी ओर बैठी हुई एक स्त्री को उसके परलोकगत-मित्र की आत्मा से गुलाब का एक फूल मिला और मुझे भी एक वैसा ही फूल मिला। यह सारा प्रयोग लगभग एक-घण्टे तक होता रहा। जब रोशनी की गई, तो मैंने देखा, कि तीन बिगुल, जो पहले सीधे टँगे थे, उनमें से दो औंधे होगये हैं और जो गुलाब के फूल प्रयोग में बैठनेवाले अपने साथ लाये थे, वे ज़मीन पर बिखरे पड़े थे।"

हमारा ख़याल है, कि श्री ऋषि महोदय की पत्नी के देहावसान के दुःख के कारण, आपकी तर्क करनेवाली शक्तियों में एक प्रकार की क्षीणता उत्पन्न होगई है। यदि ऐसा न होता, तो एक वकील के दिमाग़ में इस तरह की ऊटपटाँग-बातें कैसे घर कर सकती थीं। स्वयं ऋषि महोदय ने अपनी पत्नी के आत्मा से स्वयंलेखन द्वारा जो संवाद पाये हैं, उनकी सत्यता पर ऋषिजी के अतिरिक्त शायद ही कोई बुद्धिमान् विश्वास कर सके। उसके बाद, इँग्लैण्ड के मीडियमों द्वारा श्रीमती सुभद्रादेवी (ऋषिजी की मृत-पत्नी) का देखा जाना और ऋषिजी का

उनके वर्णन पर विश्वास करना भी ऋषिजी की अन्धश्रद्धा का प्रमाण है। स्वयं ऋषिजी पहले लिख आये हैं, कि मैंने पत्नी का फ़ोटो इँग्लैण्ड के परलोकवादियों को भेज दिया था। फिर, आप यह नहीं सोचते, कि फ़ोटो देखकर रूप-रेखा और स्वभाव का अन्दाज़ लगाकर सौ में दस-बातें सच कह देना कौन आश्चर्य की बात है? लेकिन यह विचार तो तब हो न, जब अन्धश्रद्धा पिण्ड छोड़े?

इसके बाद ऋषिजी की, पत्नी के साथ आत्मा-गाइड द्वारा बात-चीत होनेवाला प्रकरण भी बड़ा मज़ेदार है। स्वयं ऋषिजी मंजूर कर चुके हैं, कि ये प्रयोग अँधेरे में किये जाते हैं। हम देखते हैं, कि संसार में जितनी भी धोखा देनेवाली चीज़ें हैं, वे प्रायः सब-की-सब अँधेरे में ही रहती हैं। आत्मा अँधेरे में, ईश्वर अँधेरे में, पुनर्जन्म अँधेरे में और भूत-प्रेत तो मानों अँधेरे के सिवा कहीं दीखते ही नहीं। इसी तरह, इँग्लैण्ड के परलोकवादी जो बातचीत आत्मा से करवाते हैं, वह भी ख़ूब अँधेरे में होती है, क्योंकि उजेले में सब पोल खुल जाने का भय रहता है!

ख़ैर, बातचीत शुरू होने पर सबसे पहले ऋषिजी की पत्नी ही आगई, क्योंकि उन सबमें ऋषिजी ही नये-रँगरूट थे और इन्हें अपने पन्थ पर श्रद्धा दिलाना सबको अभीष्ट था। गाइड के द्वारा कुशल-समाचार कहकर आत्मा ने ऋषिजी से उनकी भाषा में बातचीत करना चाहा। जब ऋषिजी मराठी बोलने लगे, तो आत्मा कुछ गुनगुनाकर चलता बना। ठीक तो है, बेचारा गाइड 'माझा' 'तुमचा' आदि कहाँ समझ या बोल सकता था? उसने फ़ौरन आत्मा को भगाकर कह दिया, कि—'वह चला गया'। यह सारा ढोंग देखकर भी ऋषिजी का यही विश्वास रहा, कि मेरी पत्नी का आत्मा

अवश्य आया था। इसके बाद, आत्मा ने ऋषिजी के पैर छुए और उन्हें तथा उनके पास बैठी स्त्री को गुलाब के फूल भेंट किये। ऋषिजी जैसे ग्रेजुएट ने इन सब कार्यों को अपनी मृत-स्त्री का किया हुआ माना। ऊपर, ऋषिजी के शब्दों में ही हम लिख आये हैं, कि बैठक में जानेवाले लोग गुलाब के जो फूल अपने साथ ले गये थे, अन्त में वे कमरे में बिखरे दिखाई दिये। इन फूलों को बिखरे देखकर भी ऋषिजी का मस्तिष्क यह सोचने में समर्थ न हुआ, कि यह सब इन लोगों की चालाकी है, पैर छूकर और फूल देकर ये मुझे बना रहे हैं। तब भी वे यही समझते रहे, कि ये सब कार्य आत्मा कर रहा है। बलिहारी है ऋषिजी की समझ की। अस्तु।

आज से लगभग आठ-नौ वर्ष पूर्व हमने समाचारपत्रों में इसी प्रकार का एक क़िस्सा पढ़ा था। पंजाब के एक प्रतिष्ठित-वैद्य इँग्लैण्ड गये थे। वहाँ, परलोकवादियों से उनकी मुलाक़ात हुई, जिन्होंने एक-गिन्नी लेकर वैद्यजी की, उनकी मृत-माता से बातचीत करवा देना तय किया। ऋषिजी के कथनानुसार वैद्यजी भी एक अँधेरे-कमरे में लेजाये गये, जहाँ कुछ कुर्सियों के अलावा दो भोंपू (लम्बे-बिगुल) ज़मीन पर रक्खे थे। दरवाज़ा बन्द करने के पश्चात् प्रार्थना हुई और गाइड ने बतलाया, कि आपकी माता आगई हैं और वे आपसे अंग्रेज़ी में बातचीत करना चाहती हैं। वैद्यजी ने कहा—मेरी माताजी अंग्रेज़ी नहीं जानती थीं, इसलिये मैं उनसे अपनी मातृभाषा पंजाबी में ही बोलूँगा। लेकिन गाइड ने कहा, कि आपकी माताजी आपको यह बतलाने के लिये, कि परलोक जाकर मैंने कितनी अच्छी अंग्रेज़ी सीख ली है, अंग्रेज़ी में ही बोलना चाहती हैं। यदि आप उनकी इच्छा की अवहेलना करेंगे, तो

शायद वे नाराज़ होकर चली जावें। अब तो विवश होकर वैद्यजी अँग्रेज़ी बोलने लगे। उनके प्रश्नों के जो उत्तर मिले, वे गोलमोल और अधिकांश असत्य थे। इन उत्तरों के शब्द भर्राये हुए और बिगुल के द्वारा बोले हुए मालूम होते थे। बातचीत के अन्त में गाइड ने बतलाया, कि आपकी माताजी आपका सिर छूना चाहती हैं। वैद्यजी ने, इसके लिये स्वीकृति दे दी। क्षणभर बाद वैद्यजी को अपने सिर में किसी वस्तु का स्पर्श अनुभव हुआ। उन्होंने, फ़ौरन ही हाथ चलाया और कलाई पकड़ ली। वह कलाई, और कुछ नहीं, गाइड की कलाई थी। अब तो गाइड वैद्यजी पर बहुत नाराज़ हुआ और कहने लगा, कि आप बड़े अजीब-आदमी हैं, जो आत्मा के साथ मज़ाक़ करते हैं। आत्मा, अपना हाथ बचाकर, आपके हाथ में मेरा हाथ पकड़ा गया और ख़ुद नाराज़ होकर चल दिया। आप, अभी यहाँ से चले जाइये। अब तो वैद्यजी को विवश होकर वहाँ से चल देना पड़ा। इस सम्बन्ध में, वैद्यजी की यही राय बनी, कि यह धोखे की टट्टी और लोगों को ठगकर रुपये वसूल करने का एक तरीक़ा है।

वैद्यजी की ही भाँति, यदि ऋषिजी भी पैर-स्पर्श के समय चाहते, तो असल-बात उनकी समझ में आसकती थी। लेकिन, जब श्रद्धा का आधिक्य उनकी विचार-शक्ति पर से पर्दा उठाता तब तो? बेचारे भोले-आदमी भरोसे में मारे गये।

परलोकवादी-ऋषिजी को, इँग्लैण्ड के परलोकवादियों ने इतना ही धोखा नहीं दिया, बल्कि उन्हें यह भी बतलाया, कि मृतात्माओं के फ़ोटो भी खींचे जासकते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, उन्होंने श्रीमती सुभद्राबाई का, श्री ऋषि के पीछे

की तरफ़ केवल मुँह दिखलाते हुए फ़ोटो भी खींच दिया। यह फोटो भी उपरोक्त पुस्तक में छपा है और ऋषिजी की पारलौकिक-श्रद्धा का सार्टीफ़िकेट है। जिस आत्मा का, आजतक शेष संसार को कुछ भी आभास नहीं मिला, उसका फ़ोटो खिंचवा लानेवाले श्री ऋषिजी को यदि हम बीसवीं-सदी के लालबुझक्कड़ कहें, तो क्या आश्चर्य है?

इसी पुस्तक में, आगे चलकर परलोक का वर्णन किया गया है और मृतात्माओं के, पचासों-सन्देश लिखे हैं। आपको, लार्ड किचनर का भी एक सन्देश मिला था, जिसमें उन्होंने स्वदेश के लिये बड़ी चिन्ता प्रकट की थी। इसी तरह, एक बार लोकमान्य-तिलक ने आपको एक संदेश देकर भारत की दुःखावस्था के लिये खेद प्रकट करते हुए देश-सेवियों की सहायता करने का आश्वासन दिया था। आपको, एकबार एक चित्रकार आत्मा से मुक़ाबला पड़ा, जिसने क्षणभर में ही कई चित्र तयार कर दिये थे। इसी तरह के गपोड़ों से पूरी-पुस्तक भरी पड़ी है।

इन सब क़िस्सों की असलियत तभी मालूम होजाती है, जब बिना कुछ कहे-सुने स्वयं ऋषिजी अपने कानों पर हाथ धरकर यह घोषित कर देते हैं, कि किसी व्यक्ति के सम्बन्धी से समाचार पूछ देना या बातचीत करवा देना, हमारी शक्ति से बाहर की बात है। लोकमान्य-तिलक, ऋषिजी से बात-चीत कर सकते हैं, लेकिन हमसे नहीं। इसका तो स्पष्ट ही यह तात्पर्य है, कि ऋषिजी अपनी इच्छा से जो क़िस्सा गढ़कर कह दें, वह सत्य मान लो, प्रश्न करने पर आत्मा उत्तर देगा या नहीं, यह निश्चित नहीं है। तब कौन कहेगा, कि यह सारा क़िस्सा चण्डूखाने की गप्प से अधिक महत्व रखता है?

जो प्रयोग सत्य है, वह सबके सामने भी सत्य ही होना

चाहिये। सर जगदीशचन्द्र बोस यदि वनस्पतियों में प्राण-तत्व होना कहते हैं, तो वे सबलोगों को दिखलाते भी हैं, कि कष्ट पाने पर वनस्पति किस तरह दुःखी होती है। यदि बोस महोदय प्रकट-प्रयोग करने से इनकार कर दें, तो खुद चाहे जो कहें, सब मिथ्या ही समझा जावेगा। बोस महोदय की ही भाँति, यदि ऋषि महोदय भी प्रकट-प्रयोग करके जन-साधारण को यह दिखला सकें, कि किस तरह आत्माओं के सन्देश मिलते हैं और हमारे सम्बन्धी-आत्मा हमारे प्रश्नों का ठीक-ही-ठीक उत्तर देते हैं, तो हम इस बात को स्वीकार कर लेंगे, कि परलोक है और वहाँ मृतात्माओं का निवास है, जो हमलोगों से बातचीत कर सकते हैं। यदि, वे ऐसा नहीं कर सकते, तो हमारा यह विश्वास और भी अधिक दृढ़ होजाता है, कि ऋषि महोदय का मस्तिष्क, पत्नी के वियोग से अभी तक अव्यवस्थित है और वे इँग्लैण्ड के लालबुझक्कड़ों के चक्कर में फँसे हुए, अन्धविश्वास के कारण इन सब भ्रमों में विश्वास करते हैं। जिस वस्तु के लिये कहीं और कोई प्रत्यक्ष-प्रमाण ही नहीं है, उसको सत्य मानना कहाँ की बुद्धिमानी है?

परलोक और स्वर्ग-नर्क, सब कल्पना की घुड़दौड़ है। जिस तरह पंजाब के वैद्यजी की माता केवल अंग्रेज़ी ही बोलना चाहती हैं, उसी तरह और सब गपोड़े समझने चाहिएँ। इनके लिये, धर्मशास्त्रों के असभ्यतापूर्ण-लेखों के अतिरिक्त और कोई प्रमाण आज तक नहीं मिला है और न इसकी आशा ही है। इसलिये, हमारा प्रत्येक सभ्य-व्यक्ति से यह अनुरोध है, कि वे प्रमाण का अभाव होने के कारण इन सब बातों पर कदापि विश्वास न करें।

धर्म क्या है ?

जिन कई ढोंगों का खण्डन हम पहले कर आये हैं, वे एक ऐसे दायरे के भीतर की चीजें हैं, जिसे लालबुझक्कड़ों ने धर्म, मजहब या रिलीजन (Religion) के नाम से पुकारा है। इन सब को—पर्यायवाची-शब्द होने के कारण—हम 'धर्म' शब्द से ही पुकारेंगे। यों तो, धर्म के हजारों-लक्षण बतलाये जाते हैं, लेकिन एक लक्षण सर्वसम्मत माना जाता है। लोगों का कथन है, कि उस लक्षण के सम्बन्ध में संसार के किसी भी सभ्य-धर्म का मतभेद नहीं है। वह लक्षण यह है—

धृति, क्षमा, दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या, सत्यमक्रोधो, दशकं धर्म लक्षणम् ॥

अर्थात्—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दश, धर्म के लक्षण हैं।

इस लक्षण को देखनेवाला व्यक्ति तो यही समझेगा, कि धर्म एक अच्छी-चीज है और वह संसार के प्रत्येक-मनुष्य के लिये नितान्त-आवश्यक है। लेकिन नहीं, जिन्हें धर्म के व्यावहारिक-स्वरूप का कटु-अनुभव है, उनकी इस सम्बन्ध में कुछ और ही राय है। संसार के इतिहास को देखने से पता चलता है, कि धर्म का यह या ऐसे ही जितने भी अच्छे-अच्छे लक्षण बतलाये गये हैं, वे सब केवल किताबी-व्याख्या हैं। धर्म के सम्बन्ध में, किताबों में चाहे अच्छी ही बातें लिखी हों,

लेकिन व्यवहार में तो सदैव ही धर्म ने मनुष्यता का विरोध और अमानुषिकता का पोषण किया है। व्यवहार में, धर्म के जो-जो लक्षण आजतक आमतौर पर देखे गये हैं, और साधारण-मनुष्य को धर्म का जो स्वरूप बतलाया गया है, उसका वर्णन आगे किया जाता है।

संसार के धार्मिक-जीवन का इतिहास देखने पर पता लगता है, कि धर्म का लक्षण अविवेक, असहिष्णुता, उत्तेजना, चोरी, अपवित्रता, इन्द्रियलोलुपता, दुर्बुद्धि, अविद्या, असत्य, क्रोध, अकर्मण्यता, अन्धश्रद्धा और पक्षपात तथा उद्दण्डता है। जहाँ देखो, वहीं इन दुर्गुणों का साम्राज्य है। प्रत्येक धर्म में, इन दुर्गुणों की कम या अधिक मात्रा अवश्य ही पाई जाती है। जो सद्गुण उपरोक्त श्लोक में बतलाये गये हैं, उनका किसी भी धर्म के द्वारा, किसी भी जाति को, आजतक अनुभव नहीं हुआ है। ऐसी दशा में, धर्म के लक्षण में उन सद्गुणों का नाम लेना, मानों उन गुणों की निन्दा करना है।

जन-साधारण को, धर्म ने क्या सिखलाया? क्या किसी भी धर्म ने व्यावहारिक-रूप में लोगों को सदाचार की शिक्षा दी है? कदापि नहीं। सदाचार की शिक्षा देने के स्थान पर, जीवों का वध करने, अपने से दूसरों को नीच मानने और अपने-आपको सर्वोत्तम गिनने, मनुष्यों को जीवित ही कोल्हू में डालकर—धार्मिक-मतभेद के कारण—पेलवा डालने, दूसरों को काफ़िर कहकर वाजिबुलक़त्ल मानने, मनुष्यों को जीवित ही जला डालने और मनुष्य के प्राणों का शत्रु बन जाने का उपदेश क्या इसी धर्म ने नहीं दिया है? जन-साधारण के लिये, धर्म क्या है? साधु-वेशधारी लुंगाड़ों की पूजा, मन्दिर के दर्शन, सत्यनारायण या भागवत की कथा, होली का पूजन, उपवास,

व्रत, अपने धर्मशास्त्र तथा आचार्यों पर अन्धश्रद्धा, क़ुरान पर एतबार, मस्जिद के आगे बाजा बजता देखकर मर जाने को तत्पर होजाना, पीपल कटने के मामले में सैकड़ों की जान लेने को तयार होजाना, बाइबिल के गपोड़ों पर एतबार, बप्तिस्मा, गिर्जे की प्रार्थना, विरोधियों को जीवित ही जला देना या कष्ट दे-देकर उनके प्राण ले लेना, अपने धर्म के विरुद्ध एक शब्द भी सुन सकने की सहिष्णुता का अभाव, गंगा-स्नान, मदीने और जगदीश की यात्रा, किसी किताब को पढ़ना, पीपल और नीम की पूजा, मजहबी-दंगे, ऐसे दंगों में मरने पर वहिश्त की प्राप्ति का विश्वास, अन्य-धर्मियों के नाश का उपाय सोचना, छोटी-छोटी बच्चियों की शादी करना, विधवाओं से बलात् ब्रह्मचर्य पलवाना, ब्राह्मण-साधुओं को भोजन करवाना, किसी का छुआ अन्न-जल न ग्रहण करना, किसी को स्पर्श न करना, ढोंगों को आँखें बन्द करके मानना और दम्भपूर्वक अपने धर्म की प्रशंसा करना—आदि। ऐसे-ऐसे हज़ारों-दुर्गुणों के अतिरिक्त धर्म ने मनुष्य को और क्या सिखलाया है ? कौन कहता है, कि मनुष्य को धर्म ने सदाचार की शिक्षा दी है ? संसार का धार्मिक-इतिहास उठाकर देखो, धर्म के नाम पर पशुता के नंगे-नाच के अतिरिक्त और कुछ भी न दिखाई देगा। धर्म के ही कारण क्या संसार में बड़े-बड़े युद्ध नहीं हुए हैं और धर्माचार्यों ने उन सबका धर्म के ही नाम पर अनुमोदन नहीं किया है ?

धर्म के नाम पर, संसार में जितना रक्तपात हुआ है, उतना रक्त-पात साम्राज्यवृद्धि के लिये भी नहीं हुआ। धर्म ने, मनुष्य को पागल बना दिया है और उसका नाम सुनते ही मनुष्य की सारी विचार-शक्ति नष्ट होजाती, एवं वह एक प्रकार का पशु बन जाता है।

प्रत्येक धर्मवाले, जन्म से ही बालकों में धर्म नाम के संस्कार डाल देते हैं। ये संस्कार इतने प्रगाढ़ कर दिये जाते हैं, कि पूर्वप्रचलित-प्रथाओं को धर्म मानकर वह बालक उसी में उलझा रहता है। बुद्धि के उपयोग की जरूरत नहीं, जो होता आया है, वह शाश्वत है, सत्य-धर्म है। इस अन्धविश्वासपूर्ण संस्कार के ही कारण लोग जन्मभर इस पचड़े में फँसे रहते हैं। इसकी वास्तविकता या उपयोग किंवा इससे होनेवाली हानियों पर विचार नहीं करते। यदि, कोई समझदार-आदमी यह बात समझ भी लेता है, कि हमारा प्रचलित-धर्म झूठ है, तब भी वह अपने धर्म का पक्षपात सिर्फ़ इसलिये करता है, कि और लोग अपने बाप-दादों के धर्म का पक्षपात करते हैं। एक नास्तिक-ब्राह्मण, जब किसी जैनी से वेद की निन्दा सुनेगा, तो वह स्वयं वेद का विरोधी होकर भी जैनी की भर्त्सना सिर्फ़ इसलिये करेगा, कि वेद उसके बाप-दादों की चीज़ है और वह जैनी अपने ग्रन्थों को सत्य कहकर वेद की निन्दा कर रहा है। यदि, जैनी संसार के सब धर्मग्रन्थों की निन्दा कर रहा हो, तो शायद ऐसा मौक़ा न आवे। सारांश यह, कि जब कोई अपने पक्ष को सत्य तथा दूसरे के पक्ष को ग़लत बतलाने लगता है, तब दूसरे पक्ष का प्रत्येक-व्यक्ति अकारण ही पक्षपात के गर्त्त में कूद पड़ता और धर्म के नाम पर होनेवाली दलबन्दी किस तरह दृढ़ होती है, इसका प्रत्यक्ष-प्रमाण उपस्थित करता है।

इतने भयङ्कर-पक्षपात को जन्म देनेवाले धर्म में वे-वे दुर्गुण हैं, जिनका वर्णन कर सकना लेखनी की शक्ति से बाहर है। इन दुर्गुणों में, धनलोभ का उदाहरण देकर हम बतलावेंगे, किस तरह धर्म नामक वस्तु धनिकों के टके

के अधीन होगई। धार्मिकलोग कहते हैं, कि धर्म का आत्मा से सम्बन्ध है। लेकिन व्यवहार बतलाता है, कि धर्म का सम्बन्ध सीधा टके से है। जो व्यक्ति, जितना अधिक धनी है, वह उतना ही अधिक धर्मात्मा होसकता है। धर्माचार्यों को अधाधुन्ध-रुपया दीजिये, वे आपको धर्मावतार की उपाधि दे डालेंगे। ब्राह्मणों को रुपया देकर स्वर्ग का मार्ग अपने लिये खुलवाया जासकता है। पोप और पादरियों को धन देने से वे ईश्वर के नाम की हुण्डी दे देते हैं। मौलवी-मौलाना तथा फ़क़ीरों को रुपये देने से वे बहिश्त का अधिकारी बतला देंगे। धर्मशाला तथा सदावर्त का प्रबन्ध करनेवाला स्वर्ग को क्यों न जावेगा? जिस व्यक्ति ने लक्ष्मणझूले का पुल बनवाया है, वह निश्चय ही स्वर्ग जावेगा। साधुओं के निमित्त अधाधुन्ध रुपया उड़ाने से स्वर्ग-प्राप्ति आवश्यक है। कथा-भागवत, पूजा-पाठ, मन्दिर-मस्जिद और गिर्जे के कार्यों में रुपया ख़र्च करनेवाला सबसे बड़ा धर्मात्मा है। सारांश यह, कि लाल-बुझक्कड़ों के पक्ष में जो रुपया ख़र्च करता है, या उन्हें नक्द थमा देता है, वही सबसे बड़ा धर्मात्मा है। ग़रीबों को धर्म की प्राप्ति कहाँ से होसकती है, जब कि उनके पास अश्वमेध और महारुद्र-यज्ञ करने के लिये रुपया नहीं है? सारांश यह, कि जहाँ देखो, वहाँ धर्म रुपये के अधिकार में है। रुपये के बाहर धर्म बहुत कम होपाता है। धन्य है धर्म की लीला! संसार को कठपुतली की भाँति नचाने के लिये, लालबुझक्कड़ों ने कैसी बेढब-कल्पनाएँ करके लोगों के सिर पर थोप दी हैं, जो स्वयं उनके धर्मशास्त्रों से भी सर्वथा विरुद्ध हैं, नीति का तो ज़िक्र ही क्या है।

जिस तरह से धर्म धनिकों की वस्तु रहा है, उसी तरह

वह सदैव बलवानों के हाथ में पड़कर ग़रीबों पर अत्याचार करवाता रहा है। बौद्धों को जब राजशक्ति प्राप्त हुई, तो उन्होंने धर्म के सम्बन्ध में ब्राह्मणधर्म माननेवाली जनता को दिल खोलकर सताया। इसके बाद, जब वही शक्ति बौद्धों के हाथ से निकलकर ब्राह्मणधर्मानुयाइयों के हाथ आई, तो इन्होंने पिछले-ज़ुल्म का दिल खोलकर बदला लिया। रामानुजाचार्य के हाथ में यत्किञ्चित राजशक्ति आते ही उन्होंने अपने विरोधी जैनियों को धर्म के नाम पर कोल्हू में डालकर पेलवा डाला और जैनियों के हाथ में शक्ति आते ही उन्होंने नगर में कच्चा-मांस लानेवालों को फाँसी पर लटका दिया। ईसाइयां ने, राजशक्ति की ओट में अपने करोड़ों-भाइयों को मार डाला, जला दिया या विनष्ट कर दिया। मुसलमानों ने, तलवार सहित कुरान लेकर संसार में धर्म के नाम पर वे अत्याचार किये, जिनका वर्णन नहीं किया जासकता।

सारांश यह, कि धर्म शब्द का अर्थ पशुता, अन्धविश्वास, असहिष्णुता और अज्ञान है। जो लोग, धर्म शब्द का अर्थ सदाचार बतलाते हैं, वे ग़लत कहते हैं। हम यह मान लें, कि उनकी पुस्तकों में धर्म का लक्षण सदाचार ही लिखा होगा। लेकिन हज़ारों-वर्षों का ऐतिहासिक-अनुभव यह बतलाता है, कि धर्म शब्द का रूढ़-अर्थ दुर्गुणों का समूह है और रूढ़ तथा लोक-प्रचलित अर्थ के सामने किताबी-अर्थ की क्या क़ीमत है?

धर्म शब्द का अर्थ, किताबों में सदाचार अवश्य लिखा है, लेकिन व्यवहार में यदि धर्म ने सदाचार का खुल्लमखुल्ला विरोध नहीं किया है, तो दबे-शब्दों में किया है और यदि यह भी नहीं, तो उसने कम-से-कम सदाचार की उपेक्षा तो अवश्य

ही की है। जब, मृत्यु के समय नारायण-नारायण जपने से एक अधमाधम को, तोता पढ़ाने से दुराचारिणी-वेश्या को और वैरभाव से भी रामनाम लेने से निशाचरों को स्वर्ग की प्राप्ति होसकती है, तो फिर सदाचार की क्या आवश्यकता है? क्या ये क़िस्से सदाचार की अपेक्षा भक्ति यानी ख़ुशामद को अधिक महत्व नहीं देते? मुसलमानों का विश्वास है, कि भयङ्कर-दुराचारी भी अगर रसूल पर ईमान लायें, तो उसे बहिश्त मिलता और उसके सारे अपराध माफ़ होजाते हैं। ईसाइयों का धर्म कहता है, कि तुम्हारे पापों के बदले ईसा सूली पर चढ़ गया है, इसलिये उसको शरण जाने पर गॉड तुम्हें सब माफ़ कर देगा। जब, मुहम्मद या ईसा की शरण से सारे पाप माफ़ होते हैं, तो कौन बेवक़ूफ़ मौज उड़ाने से चूकेगा? आर्यसमाजी भी गाते हैं—"प्रभो, तुम पतित उधारनहार"। यानी, ईश्वर पतितों का उद्धारक है। जब, ईश्वर अपराधों की सजा देने के बदले पतितों का भी उद्धारक है, तो फिर सदाचार की क्या ज़रूरत है? एक प्रार्थना कर लेनेमात्र से ईश्वर प्रसन्न होजावेगा और हमारे दोषों को क्षमा कर देगा!

इसी तरह प्रायः सभी धर्मों ने सदाचार को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। जब, सदाचार को—जो धर्म का प्राण माना जाता है—धर्म ने तिरस्कृत कर दिया है और हज़ारों-वर्षों तक यही रफ़्तार रही है, तो कौन कहता है, कि धर्म और सदाचार एक हैं? हमारी दृष्टि से तो धर्म सदाचार का विरोधी है और इन दोनों में पूर्व-पश्चिम का-सा अन्तर है। प्रत्येक बुद्धिमान्-मनुष्य, यदि पक्षपात की दृष्टि को छोड़कर विचार करे, तो इसी निर्णय पर पहुँचेगा।

जो धर्म, दकियानूसियत का पर्यायवाची है, उसकी संसार में क्या आवश्यकता है ? जिस धर्म ने, मनुष्य को मनुष्य के प्राणों का ग्राहक बना दिया, उसकी आवश्यकता को कौन बुद्धिमान् स्वीकार कर सकता है ?

यहाँ, कोई यह कह सकता है, कि धर्म को मानने से, मनुष्य के चित्त में एक प्रकार का सन्तोष और शान्ति रहती है। जब, धर्म से यह लाभ है, तो उसे संसार से सर्वथा विदा कर देना कैसे उचित है ?

पहले तो यह कहना ही भूल है, कि धर्म से मनुष्य के हृदय में शान्ति रहती है। जहाँ तक देखा गया है, धर्म के कारण मनुष्य के हृदय में एक तीव्र-उद्वेग और असन्तोष की लहर चलती रहती है। यदि, थोड़ी-देर को यह मान भी लें, कि धर्म से कुछ व्यक्तियों को शान्ति मिलती है, तो भी धर्म की संसार को जरूरत नहीं मालूम देती। कारण, कि धर्म ही के कारण सारे संसार में अशान्ति बद्धमूल होरही है। सारे समाज की सामूहिक-क्षति जिस वस्तु में है, उसमें यदि किसी व्यक्ति-विशेष का किंचित् लाभ भी हो, तो वह वस्तु त्याज्य ही कही जावेगी। थोड़े-से लाभ के लिये बहुत-बड़ी हानि उठाना बुद्धिमानी नहीं है। इसके लिये, हम एक उदाहरण देते हैं।

शराब, एक ऐसी चीज है, जिससे यदि सौ-हानियाँ हैं, तो विधिवत उपयोग करने पर पच्चीस-लाभ भी हैं। लेकिन, समाज को इस दुर्गुण के कारण सामूहिक-रूप में बड़ी क्षति उठानी पड़ी है। यही कारण है, कि संसार के बड़े-बड़े बुद्धिमान् इस दुर्गुण को संसार से सर्वथा विदा कर देने का आन्दोलन कर रहे हैं। अब, यदि कोई यह कहे, कि शराब से सब हानियाँ ही नहीं, लाभ भी कुछ होते हैं, इसलिये उसका

उपयोग आवश्यक है, तो ऐसा कहनेवाले को कोई भी, समझदार नहीं कह सकता। कारण, कि उस व्यक्ति ने मदिरा के किंचित्-लाभ की ओर तो ध्यान दिया, लेकिन उससे होनेवाले सर्वनाश की ओर दृष्टि भी नहीं डाली।

ठीक यही दशा धर्म की भी है। धर्म से, जहाँ तिल-भर लाभ होसकता है, वहाँ पहाड़ के बराबर सर्वनाश का मुक़ाबिला करना पड़ा है और आगे करना पड़ेगा। जब हानि-लाभ की यह दशा है, तो किंचिन्मात्र-लाभ के लिये सर्वनाश का आह्वान करना कहाँ की बुद्धिमानी है ?

धर्म के पक्षपाती, आगे चलकर यह दलील देते हैं, कि धर्म के नाम पर जो-जो ज़ुल्म हुए हैं और होते हैं उन सबके लिये मनुष्य ज़िम्मेदार है, क्योंकि उसने अपनी स्वार्थ-बुद्धि से यह सब कुछ किया है। ऐसी स्थिति में, धर्म का क्या दोष है, जो उस बेचारे को निर्वासित कर दिया जावे ?

हम, इसे स्वीकार करते हैं, कि धर्म के नाम पर मनुष्यों ने अपना स्वार्थसाधन और अपनी स्वेच्छाचारिता की पूर्ति की है। लेकिन, यह एक ऐसा मर्ज़ है, जो हज़ारों-वर्ष पुराना होचुका है और मनुष्यों के जीवन में जिसका संस्कार दृढ़ होचुका है। हज़ारों-वर्षों के इतिहास से पता चलता है, कि धर्म के नाम पर सदैव ज़ुल्म होता रहा है और इसीलिये यह बात कही जाती है, कि पृथ्वीतल पर जबतक 'धर्म' का अस्तित्व है, तबतक यह बीमारी दूर नहीं होसकती। जिस चीज़ के संस्कार हज़ारों-वर्ष पुराने होचुके हैं, उस वस्तु के रहते हुए उन संस्कारों का कुछ-न-कुछ भाग दिल में अवश्य ही रहेगा। इसलिये, जिस वस्तु ने मनुष्यता के नाश में प्रधान-भाग लिया हो, उसका सर्वनाश ही श्रेयस्कर

है। संसार के विद्वानों का, ऐसी वस्तुओं के विषय में क्या मत है, इसके लिये हम एक उदाहरण देते हैं।

कई वर्षों से, निःशस्त्रीकरण-कान्फ्रेंस होरही है। संसार के सभी समझदारों का मत है, कि बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र बिलकुल नष्ट कर दिये जावें। हम पूछते हैं—ऐसा क्यों किया जावे? जिन व्यक्तियों ने शस्त्रों का आविष्कार किया था, उन्होंने तो केवल आत्मरक्षा की भावना से उन्हें बनाया था। साथ ही, जिन लोगों ने शस्त्र इकट्ठे किये, उन्होंने भी पहले आत्मरक्षा की ही दुहाई दी थी। बीच में, यदि लोगों की नीयत ख़राब होजावे और वे उन्हीं शस्त्रों की सहायता से दूसरों का सर्वस्व हरण करने लगें, तो इसमें बेचारे शस्त्रों का क्या दोष है? यह तो व्यक्तियों का दोष माना जावेगा। हमारी इस दलील को स्वीकार करके भी एक बुद्धिमान्-मनुष्य यही कहेगा, कि सच-मुच ही शस्त्रों की रचना आत्मरक्षा के लिये हुई थी, दूसरों पर आक्रमण करने को नहीं। लेकिन, मनुष्यों की वृत्तियाँ इतनी अधम होगई हैं और वे रोकने पर भी शस्त्रों के द्वारा अपने स्वार्थसाधन में इतने दत्तचित्त हैं, कि अब सिवा शस्त्रों को नष्ट कर देने के और कोई उपाय नहीं दीख पड़ता। जबतक ये शस्त्र नहीं नष्ट कर दिये जाते, तबतक संसार में व्यापक-शान्ति कभी हो ही नहीं सकती।

ठीक यही हमारा भी कथन है। धर्म की कल्पना, मनुष्यों को सदाचार पर चलाने के लिये की गई थी। लेकिन, हज़ारों-वर्षों से उसके द्वारा मनुष्यता का नाश तथा पशुता का पोषण होता आरहा है। मनुष्यों ने, अबतक उसके द्वारा ख़ूब स्वार्थ साधा है और अब भी साध रहे हैं। यह दुर्गुण भी शस्त्रों के परिणाम की ही भाँति मनुष्यों के जन्म-संस्कार में आगया है और वे इसे कदापि न छोड़ेंगे। जब, इसके नाम पर होनेवाले अत्याचारों का

किसी तरह अन्त होता नहीं दीखता, तब विवश होकर यह कहना पड़ता है, कि धर्म को संसार से भगा देने के सिवा अब और कोई उपाय नहीं है, जो यह पशुता का नंगा-नाच बन्द करवा सके। अस्तु।

कुछ लोग, धर्म के नाश कर देने का नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़कर सलाह देने लगते हैं, कि जितना प्रयत्न धर्म के नाश के लिये किया जाता है, उतना ही प्रयत्न करके धर्म को सुधारा क्यों न जावे ? यदि धर्म सुधर जाय, तो फिर उसको नष्ट करने की आवश्यकता ही न रह जाय।

हमें भी बड़ी प्रसन्नता हो, यदि वास्तव में धर्म का सुधार होजाय। यदि कोई सज्जन इसके लिये प्रयत्न करें और धर्म से पशुता निकलकर उसमें सदाचार का समावेश होजाय, तो फिर तो चाहिये ही क्या ? लेकिन, हमें इसकी कभी स्वप्न में भी आशा नहीं जान पड़ती। आजतक, धर्म में पशुता घुसी देखकर न-जाने कितने महापुरुषों ने उसे निकालने का प्रयत्न किया, लेकिन सिवा उन महापुरुषों के अन्त के, पशुता का अन्त कभी नहीं हुआ। बुद्ध, महावीर, शङ्कराचार्य, मार्टिन-लूथर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द आदि सभी महापुरुष इस पशुता को सर्वथा नष्ट या कम करवाने का प्रयत्न जीवनभर करते रहे। लेकिन, इतिहास बतलाता है, कि इसमें उन्हें जो सफलता मिली, वह नहीं के बराबर है। जब इतने बड़े-बड़े महापुरुष भी इस पशुता का नाश करवाने में सफल नहीं हुए, तो अब और कौन इस रोग को नष्ट करवा सकता है ? कोई नहीं। जब, इस बीमारी के दूर होने का कोई उपाय नहीं है, तो सिवा उस सड़े और दुर्गन्धिपूर्ण-अंग यानी धर्म को नष्ट कर देने के और कोई उपाय शेष नहीं रहता।

धर्म शब्द, इतना दूषित और गन्दा होगया है, कि उसका

नाम लेते ही सदाचार की ओर नहीं, वल्कि पक्षपात और पशुता के नंगे-नाच की ओर ध्यान जाता है। इसलिये, पारलौकिक-धर्म के अतिरिक्त लोक-व्यवहार में भी जहाँ धर्म शब्द आया हो, वहाँ से उसे निकालकर उसकी जगह दूसरा शब्द रख देना चाहिये। जैसे कि कुलधर्म, जातिधर्म और राष्ट्रधर्म को कुलव्यवहार, जातिव्यवहार और राष्ट्रीय-कर्त्तव्य कहकर पुकारना श्रेष्ठ है, इनके पीछे धर्म शब्द रखना सर्वथा-अनुचित है। हमारा तो यहाँ तक अनुरोध है, कि भविष्य में जो शब्द-कोश बनाया जावे, उसमें या तो धर्म शब्द ही न रक्खा जावे, या इसका अर्थ—पशुता, पक्षपात, अन्धविश्वास, कूपमण्डूकता, असहिष्णुता आदि लिखा जावे। क्योंकि, धर्म शब्द के वर्तमान लोक-व्यवहार में यही अर्थ समझे जाते हैं। अस्तु।

हम, एक वार फिर वही वात कहेंगे, कि पुस्तकों में धर्म शब्द की चाहे जितनी सुन्दर-परिभाषा लिखी हो, लेकिन लोक-व्यवहार और अनुभव में वह असानुषिकता का पर्याय-वाची है। धर्मपालन का फल पुस्तककारों ने चाहे जितना वढ़िया वतलाया हो, लेकिन व्यवहार में वह सर्वनाश के अतिरिक्त कोई फल देनेवाला नहीं जान पड़ता। ऊपर, हम यह तो वतला ही चुके हैं, कि धर्म और सदाचार ये दो परस्पर विरोधी-चीजें हैं, इसलिये सदाचार से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं। इन सब कारणों पर विचार करते हुए हमारा प्रत्येक सभ्य-व्यक्ति से अनुरोध है, कि वे धर्म नामक सर्वनाशकारी-ढोंग को संसार से नष्ट करवा देने का पूर्ण प्रयत्न करें। इस ढोंग के कारण हमें कितनी वड़ी-वड़ी हानियाँ उठानी पड़ी हैं, इसका वर्णन दूसरे अध्याय में किया गया है।

तो क्या धर्म-ग्रन्थ झूठ हैं ?

जब, ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, परलोक, भूत-प्रेत और धर्म सब कुछ मिथ्या-कल्पना है, तो जिन धर्म-ग्रन्थों में इन सबका वर्णन है, वे क्या झूठ हैं ? यदि वे झूठ हैं, तो उन सबके लेखकों को ऐसी झूठी-बातें लिखने से क्या लाभ था ? यह शंका, प्रत्येक आस्तिक कर सकता है।

इसके उत्तर में, हम डंके की चोट पर यह बात कहेंगे, कि जहाँ तक संसार के सभी धर्म-ग्रन्थों का पारलौकिक-विषयों से सम्बन्ध है, वे बिलकुल-झूठ हैं। कारण, कि जब परलोक की सिद्धि तथा आत्मा, ईश्वर, पुनर्जन्म आदि के अस्तित्व के विषय में कहीं और कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता, तब इनके राग अलापनेवाले धर्म-ग्रन्थों की बकवास, वन्ध्या-पुत्र के विवाह के गीतों से अधिक क्या महत्व रखती है ? जिस वस्तु का ही कहीं पता नहीं है, उसका गुणगान कैसे सत्य होसकता है ?

अब यह प्रश्न बाक़ी रहा, कि यदि धर्म-ग्रन्थ झूठ हैं, तो ऐसी झूठी-बात लिखने से ग्रन्थकारों को क्या लाभ था ? इस प्रश्न का उत्तर हम लालबुझक्कड़ों की कथा के साथ ही दे आये हैं, कि अपनी शान बनाये रखने के लिये, उन लोगों ने ऐसे प्रश्नों के भी उत्तर अपनी कल्पनाशक्ति के सहारे दे दिये, जिन प्रश्नों के सम्बन्ध में वे स्वयं भी कुछ न जानते थे। जब उत्तर दे दिये, तब अपनी बात की पुष्टि करने या अपने अनुयाइयों की संख्या

बढ़ाने के लिये उन्हें अपनी गप्पों का संग्रह करना पड़ा। इन्हीं संग्रह का नाम आगे चलकर धर्म-ग्रन्थ होगया।

जब, बड़े-बड़े आचार्यों ने अपने-अपने नाम से धर्म-ग्रन्थ बनाकर प्रसिद्ध किये, तब छोटे-आचार्यों को भी इसका शौक़ चर्राया। अतएव उन्होने भी अपने नाम से एक-एक धर्मग्रन्थ बनाना शुरू किया। आगे चलकर, जब बरसाती कीड़े-मकोड़ों की तरह सम्प्रदायों या पन्थों का जन्म होने लगा, तब प्रत्येक सम्प्रदाय या पन्थ ने अपने-अपने धर्म-ग्रन्थों की पृथक्-पृथक् रचना की। इस तरह से इतने ग्रन्थ बन गये, कि यदि केवल हिन्दू-धर्म के सभी धर्म-ग्रन्थों की एक-एक प्रति ली जावे, तो शायद पचास-साठ गधे भी उस बोझ को ले चलने में समर्थ न होंगे। जिस पन्थ को देखिये, वही दस-पाँच धर्म-ग्रन्थ बनाये तयार खड़ा है और जबसे प्रेस का कार्य शुरू हुआ है, तबसे तो इन धर्म-ग्रन्थों की संख्या दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ती ही जाती है। भारतवर्ष के सब धर्मों के भेदों-उपभेदों का योग शायद दो-हज़ार से कम न होगा। इन सब भेदों के पृथक् पृथक् धर्म-ग्रन्थ भी हैं। इस तरह, धर्म-ग्रन्थों का बाज़ार ख़ूब सस्ता है।

कोई यह न खयाल करे, कि इन ग्रन्थों में सदाचार का ही महत्व दिखलाया गया है। बल्कि, यदि सौ में एक पेज सदाचार का महत्व बतलानेवाला है, तो शेष निन्नानवे या तो अपने आराध्यदेव अथवा पन्थ की प्रशंसा से भरे हैं या अपनी आराधना के ढङ्ग का वर्णन है। तिस पर ख़ूबी यह, कि एक ही पन्थ के भेदों के ग्रन्थ परस्पर विरोधी हैं। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। पारलौकिक-विषयों में इन सबने एक दूसरे से आगे बढ़कर गपोड़ लगाने की प्रतियोगिता में क़लम तोड़ने का प्रयत्न किया है।

कुरान और बाइबिल की तो आलोचना करना ही फिजूल है। कारण, कि वे दोनों ही ख़ुदा के रसूल और पुत्र की बनाई हुई किताबें हैं। इन दोनों के गपोड़ों की बहुत धज्जियाँ अब तक उड़ाई जा चुकी हैं, इसलिये अब हम अधिक क्या कहें ?

अब, हम हिन्दू-धर्मग्रन्थों की सत्यता का संक्षिप्त-विचार करेंगे। सबसे पहले, हम गीता को ही लेते हैं। गीता, हिन्दुओं का सर्वोत्तम-धर्मग्रन्थ माना जाता है। संसार की प्रायः सभी भाषाओं में उसका अनुवाद होचुका है। गीता की तारीफ़ करते लोग नहीं अघाते। यहाँ तक, कि कल्याण-सम्पादक को गीता के गुण-गान करने के लिये अपने पत्र का 'गीताङ्क' निकालना पड़ा। जिस गीता की इतनी धूम है, उसमें सिवा लच्छेदार-बातों के और क्या है ? प्रथम-अध्याय में अर्जुन के विषाद का वर्णन करके ज्योंही दूसरा-अध्याय शुरू होता है, त्योंही कृष्ण आत्मा की अमरता का गुण गाने लगते हैं। सारी गीता पढ़ जाइये, लेकिन सिवा चमकदार-बातों के, आत्मा, ईश्वर या परलोक का कोई प्रमाण नहीं मिलता। कृष्ण ने, जिस आत्मा की अमरता का गीत गाया है, पहले उस आत्मा के लिये प्रमाण की तो ज़रूरत थी न ? लेकिन यह न करके पहले ही मल्हार गाने लगते हैं। चूँकि, संसार के प्रायः सभी आस्तिक आँखें बन्द करके आत्मा का अस्तित्व मानते हैं, अतः वे आत्मा का यह गुण-गान सुनकर बड़े प्रसन्न होते और गीता की तारीफ़ करने लगते हैं। जिन लोगों को पारलौकिक-विषयों का प्रमाण जानकर उन्हें मानने की अभिलाषा हो, उनके लिये गीता में कुछ नहीं है। आँखें बन्द करके मानो, तब तो ठीक है, यदि तर्क करते हो, तो घर जाओ, गीता में 'सत्यता' कहीं ढूँढे भी न मिलेगी।

जिन वेदों पर हिन्दुओं के दिलों में बड़ी श्रद्धा है और जिनके ईश्वरकृत तथा धर्म-शास्त्र होने का राग अलापा जाता है, वे क्या हैं ? जबतक हम वेदों को ईश्वरकृत और धर्म-शास्त्र नहीं मानते, तबतक उनकी वास्तव में बड़ी प्रतिष्ठा है। वे, हमारे पूर्वजों की सभ्यता के विकास के इतिहास हैं। पहाड़, नदी, बादल, साँप, रोग आदि से भयभीत होकर तथा उनके रहस्य को भोलेपन के कारण न समझकर उन पूर्व-पुरुषों ने जो ऋचाएँ बनाई हैं, उन्हें धर्म का अंग कैसे कह सकते हैं ? पानी का स्वामी वरुण, वनस्पतियों का स्वामी सोम और संसार का स्वामी ईश्वर को मानकर वे प्रार्थना करते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, समुद्र और रात्रि के अन्धकार को देखकर वे अपना आश्चर्य प्रदर्शित करते हैं। विभिन्न-परिस्थिति-यों का वर्णन या तात्कालिक धार्मिक-कृत्यों के वर्णन वेदों में भरे पड़े हैं। इन सबके संग्रह वेद को ईश्वर का बनाया मानना या उन्हें धर्म-शास्त्र कहना प्रत्यक्ष भूल है। धार्मिक-दृष्टि से वेदों का कोई मूल्य नहीं, वे इतिहास-ग्रन्थ हैं। जो लोग इतने मूल्यवान्-साहित्य को धर्म के असत्यतापूर्ण-क्षेत्र में खींच लाते हैं, वे अपने अज्ञान के कारण दया के पात्र हैं। 'धर्म' जिस असत्य का नाम है, उससे बेचारे वेद प्रायः मुक्त-से हैं। उन लोगों ने, यदि यज्ञ में गौ मारी, तो चुपचाप वेदों में उसका वर्णन कर दिया। अश्वमेध-यज्ञ करने पर घोड़े की क्या गति बनाते थे, यह भी उन्होंने बतला दिया। उनके कैसे-कैसे विश्वास थे, यह भी स्पष्ट कर दिया। यह, सभ्यता का आदिम-कालीन-साहित्य है। इस साहित्य को तो चुपचाप पुरातत्व-विभाग के दफ्तरों में रखवा देना चाहिये, क्योंकि ये किताबें इस बीसवीं-सदी के धर्म-ग्रन्थ नहीं हो सकतीं। जो लोग यह

मानते हैं, कि वेदों में अव्वल-दर्जे का ज्ञान भरा है, वे या तो किसी के वहकाने से ऐसा कहते हैं या उन्होंने अपने जीवन में कभी वेद देखे ही न होंगे। हाँ, कुछ दोस्तलोग ऐसे भी हैं, जो खींच-तानकर वेदों का वैज्ञानिक-अर्थ निकालते हैं। लेकिन, यह एक ढोंग से अधिक मूल्यवान्-कार्य नहीं है। कारण, कि वेद इस समय की दृष्टि से नहीं बनाये गये थे।

मोटे तौर पर वेदों के बाद उपनिषदों का काल आता है। उपनिषदों में जिस ब्रह्म का लम्बा-चौड़ा विवेचन है, उसके अस्तित्व की सिद्धि में कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता। हम, पहले वतला आये हैं, कि ब्रह्म एक ढोंग है। जब ब्रह्म ही ढोंग है, तब उसका गुण गानेवाले उपनिषद् कब सच्चे हो-सकते हैं ? उपनिषदों की ही तरह छः-शास्त्रों के विषय में भी समझना चाहिये। इन शास्त्रों में, जिस जीव, आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, ब्रह्म, पुरुष, लिङ्गशरीर आदि का वर्णन है, उनके लिये व्यावहारिक-प्रमाण क्या है ? जिस वस्तु के लिये कोई प्रमाण ही नहीं है, उसके गुणों पर विश्वास करना वही पूर्वकथित वन्ध्या-पुत्र के विवाह की धूमधाम में शामिल होने की-सी गप्प है।

इन साधारण-गप्पों से परिपूर्ण ग्रन्थों के बाद श्रीमान् पुराण महोदय का नम्बर आता है। इन ग्रन्थों के लेखकों ने, बौद्धों और जैनियों के साथ गपोड़ेबाजी की प्रतियोगिता में भाग लिया है। यह तो शायद निर्णय न होसकेगा, कि सब से तेज गपोड़ेबाज कौन रहा, लेकिन यह निश्चित है, कि हिन्दू-पुराणकार बहुत दूर तक उनके साथ-साथ दौड़े हैं। अठारह-पुराण और उनके सहायक ग्रन्थ मानों गप्पों के खजाने हैं। जिस पुराण को उठाकर देखिये, वही अपने आराध्यदेव

को संसार का सर्वोत्तम-देवता कहता है। देवीपुराण में देवी सर्वश्रेष्ठ बतलाई गई हैं और शेष सब उनके मातहत। विष्णु-पुराण कहता है—विष्णु सर्वोत्तम-देव हैं, शेष सब संसार या देवता उनके सेवक हैं। शिवपुराण, शिव को सर्वश्रेष्ठ-देवता कहकर शेष सबको उनके अधीन कहता है। लिंगपुराण की तो लीला ही विचित्र है। सारांश यह, कि सब-के-सब अपना-अपना राग गाते हैं। इन अठारहों ने भी गप्पें लड़ाने में बाज़ी-सी लगा रक्खी है। तिसपर मज़ा यह, कि जिन लोगों के दिलों में इन गपोड़ों के प्रति श्रद्धा है, वे इन सब बातों को सत्य ही मानते हैं। किसी बूढ़े-पौराणिक से पूछिये, कि क्या दुःशासन में दसहज़ार-हाथी का बल था? क्या हनुमान समुद्र कूद गये थे? क्या सुरसा ने सौ-योजन यानी आठसौ-माइल का मुँह चीरा था? क्या कुम्भकरण की मूछ एक-योजन यानी आठ-माइल लम्बी थी? क्या वामन ने तीन ही पैर में संसार नाप लिया था? तो वह इन सब गपोड़ों के उत्तर में छाती ठोककर यह बात कहेगा, कि ये सब बातें सत्य ही नहीं, बल्कि ध्रुव-सत्य हैं। इस अन्धविश्वास में उस बेचारे का कुछ भी दोष नहीं है। जन्म से ही धर्मग्रन्थ-धर्मग्रन्थ कहकर उसमें इन सबको सत्य मानने के संस्कार डाल दिये गये और श्रद्धा के बाहुल्य तथा तर्क के अभाव में वह जीवनभर इन गपोड़ों को सत्य मानता रहा। केवल पुराण ही नहीं, सभी धर्म-ग्रन्थों की यही दशा हुई है और लोगों को बिना विचारे उन्हें सत्य मानने की शिक्षा दी गई है। यदि यह शिक्षा लोगों के दिलों से दूर होजाय और वे स्वबुद्धि से निर्णय करने लगें, तो संसार का कोई भी धर्म-शास्त्र एक क्षण के लिये सत्य न माना जावे।

इस विषय में, हिन्दुओं की जितनी दुर्दशा हुई है, उससे अधिक दुर्दशा मुसलमानों तथा ईसाइयों की हुई है। उनके यहाँ तो तर्क करना पापात्मा का लक्षण है। क़ुरान, ख़ुदा के यहाँ से मुहम्मद साहब के द्वारा आया है और वह कलामे-इलाही है, इस बात में जो व्यक्ति सन्देह करे, वह काफ़िर है और दोज़ख़ का भागी है। आदम की पसलीवाले क़िस्से में जिसका एतबार नहीं है, उसके लिये नर्क तयार है, यह ईसाई आदर्श है। ईसामसीह के सम्बन्ध में, बाइबिल में जो-जो गपोड़े लिखे हैं, उनपर जिसे विश्वास नहीं है, उसे हज़रते ईसा कभी भूलकर भी अनन्त-दण्ड (Eternal Punishment) से न बचावेंगे। सारांश यह, कि इन दोनों धर्मों में भी यह सख़्त-क़ानून है, कि धर्म-ग्रन्थों की एक-एक मात्रा सत्य है, उसे सत्य मानो। यदि असत्य मानोगे, तो नर्क जाओगे।

और लोगों की ही भाँति, जैनियों के धर्म-ग्रन्थ भी गपोड़ों से परिपूर्ण हैं। संख्या-शास्त्र की कमज़ोरी समझकर या अन्य किसी कारण से जैनियों ने संख्या सम्बन्धी वे-वे गपोड़े हाँके हैं, जिनकी इस सदी में शायद कोई कल्पना भी न कर सकेगा। जैनियों के ग्रन्थों का प्राय: प्रत्येक-वर्णन गपोड़ों का आदर्श है। देवताओं की शक्ति, स्वर्ग, नर्क और आत्मा के विभिन्न-जन्मों में उत्पन्न होने का जैसा लम्बा-चौड़ा और बे-सिर-पैर का वर्णन जैनियों ने किया है, वैसा शायद लालबुझक्कड़ के चचा भी नहीं कर सकते। समवसरण और किसी बड़े देवता के तीर्थंकरों के दर्शनार्थ आने के समय का वर्णन पढ़िये, तो अक्ल हैरान होजायगी। तीर्थंकरों के सामने, देवों ने जो नाटक किये हैं, उनमें बड़े-बड़े मटकों के बराबर मोती लटकते थे! ग़ज़ब किया! एक छोटा-सा अपराध करने पर अनन्तानन्त-कोड़ाकोड़ी वर्ष

तक घोर-नर्क में रहना पड़ता है। इसी तरह की गप्पों से जैन-शास्त्र भरे पड़े हैं। इन गपोड़ों की असत्यता सभी पढ़े-लिखे और नवयुवक जानते हैं, फिर भी वे अपने शास्त्रों को सिर्फ़ इसलिये सत्य मानते हैं, कि अन्यान्य धर्मावलम्बी अपने-अपने शास्त्रों को सत्य कहते हैं। धर्म नामक ढोंग का कुछ ऐसा प्रभाव ही है, कि उसको माननेवाला सत्य की अपेक्षा प्रतिस्पर्द्धा का अधिक ध्यान रखता है। इतनी भयङ्कर-स्थिति को जन्म देनेवाले धर्म को इस बीसवीं-सदी में भी जा लोग आवश्यक मानते हैं, उनकी बुद्धि को दूर ही से प्रणाम है। अस्तु।

सारांश यह, कि संसार के सभी धर्म-शास्त्र, जहाँ तक कि उनका पारलौकिक-विषयों से सम्बन्ध है, झूठ हैं और बिलकुल झूठ हैं। यदि वे सत्य होते, तो उनमें वर्णित आत्मा, परलोक, ईश्वर, पुनर्जन्म, भूत-प्रेत आदि के लिये कोई प्रमाण अबतक अवश्य ही मिल जाता। प्रमाण के अभाव में परलोकादि झूठ हैं, इसीलिये उनका भाटों की तरह वर्णन करनेवाले धर्म-शास्त्र भी झूठ ही हैं।

हम, इस बात की ओर पुनः ध्यान आकर्पित करते हैं, कि धर्म-शास्त्रों में सदाचार का यत्र-तत्र जो यत्किञ्चित् वर्णन आया है, वह गपोड़ों के बीच छिपा होने के कारण नहीं के बराबर है। चूँकि, धर्म-शास्त्रों में गपोड़ों का बाहुल्य है, इसलिये वे अपने-आप गप्प-शास्त्र होगये हैं। और गप्प-शास्त्र का क्या मूल्य है, यह सभी जानते हैं!

धर्मशास्त्रों का परस्पर विरोध और उनके आस्मानी-गपोड़ों को देखकर ही किसी कवि ने कहा है—

"श्रुतयोऽपि भिन्नाः स्मृतयोऽपि भिन्नाः
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।"

अर्थात्—श्रुति और स्मृति, सब अपना-अपना भिन्न-राग गानेवाली पुस्तकें हैं। एक भी (धर्मशास्त्रकार) मुनि ऐसा नहीं है, जिसका कथन प्रामाणिक हो।

यह कथन, केवल श्रुतियों और स्मृतियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसे सभी धर्म-शास्त्रों के लिये समझना चाहिये। जितनी भी पुस्तकें धर्म-शास्त्र के नाम से मशहूर हैं, उन सब की यही दशा है। हमारे इस कथन की सत्यता, प्रत्येक सभ्य-व्यक्ति, किसी भी धर्म-शास्त्र को आलोचनात्मक-दृष्टि से पढ़कर जान सकता है।

दूसरा-अध्याय

धर्म ने, मनुष्य को पशु, कूपमण्डूक और असहिष्णुता की मूर्ति बना दिया है। विश्वास के माहात्म्य के गीत गा-गाकर, धर्माचार्यों ने मानव-जीवन को दुःखमय बना डाला। तिस पर मज़ा यह, कि धर्म का अधिकार केवल पारलौकिक-विषयों में ही नहीं रहा। इस ढोंग ने, अपने हाथ-पैर इस तरह फैला रक्खे हैं, कि मानव-जीवन का प्रत्येक-क्षेत्र, भागवत के कल्पित-नर्क का नमूना हो रहा है। हमारा विवेक, हमारी मनुष्यता, हमारी विचार-शक्ति, हमारा कुटुम्ब-प्रेम, हमारी राष्ट्रीयता और हमारा मानव-प्रेम, धर्म की झूठी-बलिवेदी पर बलिदान हो चुका है। इस तरह हमारा सर्वनाश होगया, तब भी क्या हम इस धर्म नामक ढोंग की दुम पकड़े रहेंगे?

अन्धविश्वास.

जिस धर्म और उसके अण्डे-बच्चों का वर्णन हम पहले-अध्याय में कर आये हैं, उसकी जड़ एकमात्र अन्धविश्वास है। अन्धविश्वास का, धर्म के साथ ऐसा प्रगाढ़-सम्बन्ध है, कि जहाँ धर्म है, वहाँ अन्धविश्वास अवश्य ही है। अन्धविश्वास के विना धर्म की कल्पना आकाशकुसुम के समान है। यानी, जहाँ अन्धविश्वास नहीं है, वहाँ धर्म तो कभी हो ही नहीं सकता।

यों तो, संसार के सभी धर्मों में अन्धविश्वास कूट-कूटकर भरा है, लेकिन यदि यहाँ सब धर्मों के अन्धविश्वासों का वर्णन किया जावे, तो यह पुस्तक महाभारत से भी बड़ी होजाय। इसलिये और सब धर्मों के अन्धविश्वासों का जिक्र छोड़कर, हम केवल हिन्दूधर्म के अन्धविश्वासों का संक्षिप्त-वर्णन करेंगे।

हिन्दूधर्म में भी, अन्य धर्मों की ही भाँति आमतौर पर यह सिद्धान्त माना जाता है, कि—"विश्वासो फलदायकः"। इस विश्वास का नाम ही अन्धविश्वास है। हिन्दूधर्म का प्रत्येक-सम्प्रदाय यानी प्रत्येक-भाग इसी 'विश्वास' से ओत-प्रोत है। औरों की कौन कहे, जो आर्यसमाज भारत का सबसे अधिक उन्नत और तार्किक-समाज माना जाता है, वह भी अन्ध-विश्वास के कीचड़ से न बच सका। 'वेद ईश्वरकृत हैं' 'इदं सोमाय स्वाहा' 'इदमग्नये स्वाहा' आदि इसी अन्धविश्वास के द्योतक एवं प्रमाण हैं। हम बतला आये हैं, कि जहाँ धर्म का नाम भी आगया है, वहाँ अन्धविश्वास पहले ही खड़ा

मिलेगा। जब, आर्यसमाजियों को भी अन्धविश्वास ने न छोड़ा, तो शेष लोगों का तो ज़िक्र ही क्या है, जिनका सारा जीवन ही अन्धविश्वासमय है। अब, हम ऐसे कुछ अन्ध-विश्वासों का वर्णन करके यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे, कि किस तरह इन अन्धविश्वासों ने धर्म के नाम पर मनुष्यता का सर्वनाश किया है।

इन अन्धविश्वासों में, यज्ञ का नाम सबसे पहले लिया जासकता है। विभिन्न-देवताओं की कल्पना के बाद जब उन्हें प्रसन्न करने के लिये सुन्दर और स्वादिष्ट-पदार्थ भेंट करने का सवाल पेश हुआ और प्रत्यक्ष-रीति से यह कार्य असम्भव जान पड़ा, तब लोगों ने यह बात सोच निकाली, कि अग्नि में ये चीज़ें डालकर उन देवताओं के नाम से जला दी जावें, तो उनके धुएँ को पाकर देवतालोग प्रसन्न होजावेंगे। बस, फिर क्या था, बड़े-बड़े यज्ञ शुरू होगये और हज़ारों-मन खाद्य-सामग्री आग में जलाई जाने लगी। आगे चलकर, यज्ञों का वह विस्तार हुआ, कि सारा धर्म उन्हीं में निहित माना जाने लगा एवं गौ, घोड़ा तथा मनुष्य तक काट-काटकर उन यज्ञों में डाले जाने लगे। प्राचीन-ग्रन्थों में, इन यज्ञों का वर्णन पढ़कर रोएँ खड़े होजाते हैं। बौद्धकाल तक इनका प्राबल्य रहा। अन्त में, जब बुद्ध ने इसकी पोल खोली और इस ढोंग के विरुद्ध बग़ावत का झण्डा खड़ा किया, तब जीवों का मार-मारकर यज्ञों में डालना बन्द हुआ। लेकिन मूलयज्ञ का ढोंग फिर भी प्रचलित रहा और आज भी प्रचलित है। पूर्व-पुरुषों के नक्शे-क़दम पर चलने का दम भरनेवाले आर्यसमाजी अबतक, यज्ञ को मनुष्य-जाति के लिये आवश्यक मानते और करते हैं। जिस समय ये पंक्तियाँ लिखी जारही हैं, तब अज-

मेर में होनेवाले निर्वाण-अर्द्धशताब्दी-उत्सव की कार्यकारिणी-समिति इस बात का इन्तिज़ाम कर रही है, कि अर्द्धशताब्दी के अवसर पर होनेवाले बृहद्-यज्ञ में एकहज़ार-मन सामग्री तथा चारसौ-पीपे घी की आहुतियाँ दी जावें। कारण पूछने पर बतलाया जाता है, कि यज्ञ करने से वायु शुद्ध होती है। पहले तो यह कहना ही फ़िज़ूल है। कारण, कि जहाँ हज़ारों-मन-गन्दगी है, वहाँ की वायु को यदि दसहज़ार-मन की आहुतियाँ दी जावें, तो वे भी शुद्ध करने में असमर्थ रहेंगी। कड़ी-हवा के एक झोंके से आपके यज्ञ की शुद्ध-हवा न-जाने कहाँ जाय। इसके अतिरिक्त, अजमेर में, रेलवे के दो बड़े-बड़े कारख़ाने हैं, जो कई टन कोयला रोज़ जलाकर धुआँ उगलते हैं। इस बृहद्-यज्ञ की सारी सुगन्धि को, वह धुआँ एक घण्टे में चाट जावेगा। यदि हवा शुद्ध ही करनी है, तो सारे देश को सफ़ाई की शिक्षा देनी चाहिये तथा सभी धुआँ उगलनेवाले कारख़ाने बन्द करवा देने चाहिएँ। यदि यह असम्भव है, तो इस ग़रीबी के ज़माने में, देश के ये खाद्य-पदार्थ अकारण ही जलाकर, उन्हें बेचारे ग़रीबों के मुँह से भी क्यों छीनते हैं? यही सामग्री यदि दीन-हीन मनुष्यों में बाँट दी जावे या किसी अनाथालय को दे दी जावे, तो कितनी भलाई हो। अब, हौआ-आदम के ज़माने की लकीरें पीटने से कोई लाभ नहीं है। यज्ञ का ज़माना हज़ारों-वर्ष पीछे रह गया।

आजकल, प्रत्येक-ढोंग को वैज्ञानिक-रूप देने की प्रथा-सी चल पड़ी है। सनातनधर्मियों से जब कोई बड़-पीपल आदि की पूजा का कारण पूछता है, तो वे फ़ौरन कहने लगते हैं, कि इनके सम्पर्क से प्राणदायक-तत्वों की वृद्धि होती है। जैनियों से जब कोई वैज्ञानिक, उपवास का कारण पूछता है, तो वे

उपवास से मोक्षप्राप्तिवाले ढोंग को छिपाकर फ़ौरन ही कहने लगते हैं, कि अमेरिका के डाक्टरों का मत है, कि उपवास से स्वास्थ्य-लाभ होता है! ठीक यही दशा हमारे आर्यसमाजी भाइयों की भी है। यज्ञ, चूँकि हमारे पूर्व-पुरुष करते थे और यह रूढ़-परिपाटी है तथा देवताओं को प्रसन्न करने का साधन है, इस नग्न-सत्य को छिपाकर वे इस ढोंग से वायु की शुद्धि के राग गाने लगते हैं। हम पूछते हैं, कि यदि केवल वायु की शुद्धि ही उद्देश्य है, तो ख़ूब आग जलाकर सब सामग्री एक दम से डाल देनी चाहिये। नहा-धोकर तथा वैदिक-नियमों के अनुसार देवताओं के नाम ले-लेकर स्वाहा-स्वाहा चिल्लाने का तो कोई मतलब ही नहीं रह जाता। इस तरह धीरे-धीरे निकलनेवाला धुआँ तो अधाधुन्ध गन्दी-हवा पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। उस तरह, यानी एकदम झोंकी हुई सामग्री का प्रबल-धुआँ तो शायद गन्दगी को थोड़ा-बहुत पीछे भी हटा सके। इस बीसवीं-सदी में और बड़े-बड़े तार्किक-विद्वानों को इस तरह अन्धविश्वास के गर्त्त में फँसे देखकर दुःख से हृदय उबल पड़ता है। धर्म के सबसे भयङ्कर-दुष्परिणाम अन्धविश्वास के कटु-परिणाम का इससे अधिक प्रमाण और क्या चाहिये? खेद।

यज्ञ के बाद, बलिप्रदान का नम्बर आता है। यज्ञों में दी जानेवाली बलि के अतिरिक्त, लोग, अपने कल्याण के लिये जीवों या मनुष्यों की देवताओं पर बलि चढ़ाया करते थे। यह प्रथा, आज भी मौजूद है और क़ानूनी मजबूरी के कारण नर-बलि तो सभी सभ्य-देशों से प्रायः उठ-सी गई है, लेकिन पशु-बलि बाक़ी है। नर-बलि के काण्ड भी अभी कहीं-कहीं देखे जाते हैं। कुछ दिन पूर्व हमने पत्रों में एक ऐसे शाक्त को सेशन

से फाँसी की सज़ा मिलने का संवाद पढ़ा था, जिसने देवी के सामने एक कन्या की बलि दी थी। पशु-बलि, आमतौर पर सारे भारत में होती है और कहीं-कहीं तो बड़े-बड़े कुलीन कहे जानेवाले 'ब्राह्मण' भी उसमें भाग लेते हैं। राजपूताने में इसका बड़ा ज़ोर है। अपने कल्याण की इच्छा से, हम किसी प्राणी को अपनी कल्पित-देवी के सामने काट डालें, यह कहाँ का न्याय है? इन सब अन्धविश्वासजन्य अधम-कृत्यों को देखकर भी कौन कहता है, कि धर्म ने मनुष्य को पशु से नीच नहीं बना डाला है?

मंत्र-तंत्र को सत्य माननेवाला एक अन्धविश्वासपूर्ण-युग बीत चुका है, फिर भी अभी उसके अनुयाई बहुत बाक़ी हैं। इसे छोड़कर, अब हम ज़रा वैराग्य-भावना की ख़बर लेंगे।

धर्माचार्यों ने, मनुष्यों को सचमुच ही अन्धा तथा विवेक-शून्य बनाकर कठपुतली की भाँति नचाया और नचा रहे हैं। इसी आँखमिचौवल में पड़कर, मनुष्यों ने लालबुझक्कड़ों की सब कल्पनाओं को सत्य मान लिया। ईश्वर तथा परलोक आदि बातों पर विश्वास कर चुकने पर, मनुष्यों को यह उपदेश दिया गया, कि—"जबतक तुम सांसारिक-उलझनों को छोड़, विरक्त होकर भक्तिपूर्ण-जीवन नहीं व्यतीत करते, तबतक तुम्हें उस स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होसकती, जहाँ अप्सराओं के झुण्ड नवागन्तुकों से प्रेम करने को हाजिर खड़े रहते हैं। कारण, कि ईश्वर तबतक प्रसन्न न होगा, जबतक तुम जंजाल छोड़कर उसकी भक्ति न करो।" बस फिर क्या था, झुण्ड-के-झुण्ड मनुष्य चल दिये स्वर्ग की प्राप्ति करने! किसी भी भले-आदमी ने आँखें खोलकर यह न देखा, कि जिस ईश्वर को प्रसन्न करके ख़याली-स्वर्ग की प्राप्ति का यह प्रयत्न है, वह या उसका

स्वर्ग या हमारा आत्मा है भी, या नहीं ! यह वैराग्य की अधम-भावना, संसार के प्रायः सभी धर्मों में देखी जाती है। ईसाइयों के यहाँ तो इसके सम्बन्ध में मनुष्यता को उल्लंघन करनेवाले ऐसे-ऐसे क़िस्से हैं, जिन्हें सुनकर रोएँ खड़े होजाते हैं। छोटे-छोटे बच्चों, बूढ़े माता-पिता और निःसहाय-परिवार को छोड़कर सन्यास लेना उनके यहाँ एक साधारण-बात थी। यही नहीं, अपने परिवार के प्रति निस्पृहता दिखलाने के लिये, बहुत-से लोग तो घर छोड़ने से पूर्व अपनी सम्पत्ति भी बाँट दिया करते थे। वैराग्य की परीक्षा के लिये आचार्यलोग अनेक उपाय करते, यहाँ तक कि स्वयं उसके लड़के को नदी में फेंक आने का हुक्म उसे ही दिया जाता था। इस हुक्म के पालन में भी जो लोग इनकार नहीं करते थे, उन्हें पक्का-वैरागी समझा जाता था।

ईसाइयों की कौन कहे, हमारे हिन्दू-समाज में भी प्रायः यही दशा रही है। अबतक भी जो लोग विरक्त यानी बहके हुए दिमाग़ के हैं, वे अपने बूढ़े माता-पिता, नवविवाहित या असहाय-पत्नी और छोटे-छोटे बच्चों के भरण-पोषण की चिन्ता छोड़ और उन्हें धोखा देकर घर से चल देते हैं। इस भावना में उनका कोई दोष नहीं है। धर्म की अधम-भावना उन्हें यही सिखलाती है, कि ये माता-पिता और स्त्री-पुत्र तुम्हारे लिये बन्धन और महास्वार्थी हैं। सबलोग अपना-अपना मतलब साधनेवाले हैं। तुम्हारा कोई नहीं है। अन्तिम-समय में, केवल धर्म ही तुम्हारे साथ जावेगा, ये सब यहीं रह जावेंगे।

जो लोग अक़्ल के दुश्मन हैं तथा जिनकी खोपड़ी पर अन्धविश्वास का भूत सवार है, वे ऐसी नीच-बातों के चक्कर में

फँसकर इन्हें सत्य मान लेते और घर से चल देते हैं। वर्तमान हिन्दू-समाज में, स्त्रियों की जो दशा है और पति के अभाव में उन्हें जिस दुःख का सामना करना पड़ता है, उसे सभी बुद्धिमान् जानते हैं। ऐसी असहाय-स्त्री और छोटे-छोटे बच्चों को अथाह-स्थान पर धोखा दिलवा देनेवाली वैराग्य-भावना की जितनी भी निन्दा की जाय, कम है। अधम-धर्माचार्य, इन असहायों का जिक्र चलने पर कहने लगते हैं—"अरे, संसार के सभी प्राणी अपना-अपना भाग्य लेकर पैदा हुए हैं। इन लोगों के भाग्य में जैसा बदा होगा, वह होजावेगा। कौन किसकी माता है और कौन किसका पुत्र ? यह सब मिथ्या-मोह है !" यह कथन आमतौर पर, विना नीति और सामाजिक-व्यवस्था का विचार किये, बड़ी-बड़ी चोटी और तिलकवाले लोगों के द्वारा होता देखा गया है।

हम पूछते हैं, कि जिन लोगों पर वैराग्य सवार हो, वे अपना विवाह ही क्यों करें ? यदि विवाह के चक्कर में फँस गये हैं, तो जबतक परिवार को उनकी जरूरत रहे, तबतक परिवार को छोड़कर जाने का उन्हें क्या अधिकार है ? जिसके पालन का आश्वासन देकर विवाह किया, उसके साथ विश्वासघात करके उसे हिन्दूजीवनरूपी गर्त्त में ढकेलकर क्या कभी उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होसकती है ? यदि सचमुच ही ईश्वर होता और उसमें न्यायबुद्धि होती, तो वह ऐसे धोखेबाजों को कड़ी-से-कड़ी सजा दिये विना कभी न छोड़ता।

विचारणीय-विषय यह है, कि जो व्यक्ति अपने बूढ़े माता-पिता से प्रेम नहीं करता और अपना कर्त्तव्य समझकर उनकी सेवा नहीं करता, जिसे अपनी विवाहिता-पत्नी तथा छोटे-छोटे बच्चों से प्रेम नहीं है और उनके प्रति अपने कर्त्तव्य को जो

नहीं जानता, वह व्यक्ति (यदि ईश्वर होता भी तो) ईश्वर के प्रति अपने कर्त्तव्यों का क्या पालन कर सकता था और उससे क्या प्रेम कर सकता था? ऐसा मनुष्य कायर है। मर्दों का तो यह लक्षण है, कि वे अपने कर्त्तव्य पर डटे रहते हैं, फिर भले ही उन्हें उसके बदले दुःख ही उठाना पड़े।

सारांश यह, कि अन्धविश्वास में फँसे हुए लोगों को, कल्पित-ईश्वर, स्वर्ग, नर्क आदि के भय-प्रलोभन दिखलाकर, धर्म ने मनुष्यता का सर्वनाश करवा डाला है। हज़ारों ही नहीं, लाखों-करोड़ों मनुष्यों को, धर्म ने इस विषय में अबतक वह धोखा दिया है, कि उन बेचारों की अज्ञानवश ज़िन्दगी ही ख़राब होगई। इस सांसारिक-जीवन में, नीतिपूर्वक चलने की शिक्षा देने के बदले, धर्म ने वैराग्य-भावना की शिक्षा दी और उन्हें धोबी के कुत्ते की तरह न घर का रक्खा, न घाट का। परलोक तो है नहीं, जहाँ की सिद्धि हो, इस लोक के सुखों और कर्त्तव्य-पालनों से भी उन बेचारों को वंचित करनेवाली वैराग्यभावना के जनक धर्म की जितनी भी निन्दा की जाय, वह कम है।

"संसार झूठ है, स्वप्न है। पारलौकिक-जीवन ही जीवन है।" यह भ्रम, हमारे हिन्दू-समाज में रोग के कीटाणुओं की भाँति घुसा हुआ है। मूढ़ और अशिक्षितलोग तो इस भ्रम में फँसे ही हैं, लेकिन यह देखकर आश्चर्य की सीमा नहीं रहती, कि बड़े-बड़े विद्वानलोग भी इस भ्रम में उलझे हैं। एक मित्र बतलाते थे, कि हरिद्वार आदि स्थानों पर कुछ ऐसे साधु देखे गये हैं, जो पहले जज या वकील थे। ग्रेजुएटों को मूड़ मुड़ाये देखकर भला कौन बुद्धिमान् कह सकता है, कि अन्धविश्वास हमारी रग-रग में नहीं घुसा है? अभी जून १९३३ ई० में, पंजाब के एक ग्रेजुएट सन्यासी, चिता

पर जीवित ही चढ़कर जल गये। आप, अपने जलने का कारण बतलानेवाला एक पत्र छोड़ गये हैं, जिससे मालूम होता है, कि श्रीकृष्ण की मुलाक़ात की प्रबल-उत्कण्ठा के कारण आपने यह स्वदाह किया है! इसी तरह फ़रवरी १९३२ई० में, मद्रास प्रान्त में, एक शिक्षित-युवक, एक जलते हुए किन्तु सूने यज्ञ-कुण्ड में कूदकर इसलिये मर गया था, कि उसे जीवन-मरण के चक्कर से छूटकर शीघ्र या तत्क्षण मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा थी। यह क़िस्सा भी पूर्वकथित स्वामीजी की ही भाँति लिखकर छोड़े हुए वसीयतनामे से विदित हुआ था।

संसार को मिथ्या बतला-बतलाकर इन ढोंगी-धर्माचार्यों ने, मनुष्य को कहाँ तक अन्धा बना दिया है, इसके लिये इससे सुन्दर-उदाहरण और क्या होंगे? झूठे और काल्पनिक-परलोक की चिन्ता ने, मनुष्य को मानव-प्रेम का विरोधी बना डाला है। यही नहीं, वह अपने अमूल्य-जीवन को भी तुच्छ मानने लगा है। कितने खेद की बात है।

अज्ञान का लक्षण सभी लोग यह मानते हैं, कि सत्य को असत्य और असत्य को सत्य मानना। जो लोग, प्रत्यक्ष दीखनेवाले और अहर्निशि हमारे उपयोग में आनेवाले संसार को झूठ कहते और जिस परलोक की केवल कल्पना है, जिसके लिये कोइ प्रमाण भी नहीं है, उसे सत्य मानते हैं, उनसे बढ़कर अज्ञानी और कौन होसकता है? प्रत्यक्ष झूठ है और कल्पना सत्य है, इससे बढ़कर मूढ़पन और क्या होगा? वे भोले-भाले लोग, जो इस तरह की मूढ़तापूर्ण-बातें करनेवाले चोंगों के चक्कर में फँसकर अपना सर्वनाश कर बैठते हैं, सर्वथा दया के पात्र हैं! हम, लेजिस्लेटिव-एसेम्बली के सदस्यों से अनुरोध करते हैं, कि वे भविष्य में ऐसे नये

होनेवाले साधुओं की रोक के लिये एक क़ानून बनवावें। किसी भले-आदमी को दम-झाँसे देकर उसके बाल-बच्चों से अलग करवा देना प्रत्यक्ष धोखा और नीति का नाश है!

धर्म ने, मनुष्य की बुद्धि को सर्वथैव कुंठित और विचार-शून्य बना दिया, इसके हज़ारों-प्रमाण हैं। इनमें से, मूर्ति-पूजा या मन्दिरवाद भी एक है। जिस ईश्वर या जिन देव-ताओं के अस्तित्व के लिये कोई प्रमाण नहीं है, लालबुझक्कड़ों के कथन के अतिरिक्त और किसी तरह जिनका होना साबित नहीं होता, उन्हीं देवताओं और ईश्वर के नाम पर एक-एक पत्थर रखकर लोग पूजने लगे। आगे चलकर, इन्हीं पत्थरों के निवासार्थ करोड़ों-रुपयों के व्यय से मन्दिर बनने लगे। लोग, ग़रीबों के गले काट-काटकर धन इकट्ठा करने और मन्दिरों को तयार करवाने में उसे खर्च करने लगे। एक-एक मन्दिर दस-दस लाख रुपये तक की लागत का बना देखा गया है। ऐसे मूल्यवान-मन्दिर भारत में सैकड़ों की तादाद में हैं। छोटे-छोटे मंदिर—जिनमें हज़ारों की पूँजी लगी है—का तो कोई हिसाब ही नहीं है। जितनी पूँजी इन मन्दिरों में लगी है, उतने धन से यदि देश में कल-कारख़ाने खोल दिये जाते और जितना ध्यान धर्मरूपी ढोंग के प्रचार में लगाया गया है, उतना उन कारख़ानों की उन्नति में लगाया जाता, तो आज हमारे देश की यह दीन-स्थिति कदापि न रहने पाती। लेकिन इस बात पर ध्यान कौन दे? लोगों के दिलों पर तो धर्म का भूत सवार था और अब भी है। इसी पागलपन के वश होकर उन्होंने काल्पनिक देवी-देवताओं के नाम पर रक्खे हुए पत्थरों के भवन बनाने में दीन-देश की अधाधुन्ध-सम्पत्ति लगा दी। तीर्थस्थानों में जाकर देखिये, तो मालूम होने लगता है, कि सारा संसार मन्दिरमय

है। तिस पर तारीफ़ यह, कि बड़े-बड़े विद्वान् समझे जानेवाले लोग इन मन्दिरों की प्रशंसा करते तथा उनमें रक्खे हुए पत्थरों की पूजा करते हैं। जिस देश की यह दशा है, जहाँ अविद्या और अज्ञान ने इस बुरी-तरह घर कर रक्खा है, उस देश की अवनति नहीं, तो क्या उन्नति होती ?

इन मन्दिरों के नाम पर जो-जो भयंकर-अत्याचार होते हैं, देव-दर्शन की ओट में जैसी-जैसी लीलाएँ होती हैं, उनका वर्णन क्या करें ? कई शहरों में, मन्दिरों के नाम पर ही अड्डे चलने की बात मशहूर और अनुभवसिद्ध है। तिस पर तारीफ़ यह है, कि श्रावण-मास में—जब झूले होते हैं—तब देव-दर्शनार्थियों के मनोरंजनार्थ मन्दिरों में रण्डियों का नाच करवाया जाता है। जिस मन्दिर में जितनी ही ख़ूबसूरत-रण्डी नाचती है, उसमें उतने ही अधिक दर्शनार्थी इकट्ठे होते हैं। हिन्दू-जाति के ह्रास और अवनति तथा अन्धविश्वास की यह बड़ी ही करुण-कहानी है। आश्चर्य तो है लोगों की उस फूटी-बुद्धि पर, जिसके द्वारा वे इस सब काण्ड को उचित मानते हैं।

उत्तर-भारत में तो पारलौकिक-साधन मन्दिर में केवल श्रावण-मास में ही रण्डी नाचती है, लेकिन ठेठ-दक्षिण में तो देवताओं के नाम पर रक्खे हुए पत्थरों के सामने बारहो मास नाचने-गानेवाली देवदासियों का इन्तिज़ाम है। ये देवदासियाँ और कोई नहीं, गृहस्थों के घर की वे कुमारी-कन्याएँ होती हैं, जिन्हें उनके माता-पिता देवताओं की सेवा के लिये मन्दिर के अर्पण कर देते हैं। इन बेचारियों के साथ जिस अमानुषिकता का व्यवहार किया जाता है और जिस तरह वे ख़रीदी हुई वेश्याओं की तरह उपयोग में ली जाती हैं, उससे दुःखी होकर

इस प्रान्त की व्यवस्थापिका-सभा के एक सम्माननीय-सदस्य ने, देवदासी-प्रथा को रोकनेवाले क़ानून का एक मसविदा कौंसिल में पेश किया है।

मन्दिरों में, ऐसे-ऐसे सैकड़ों-अनर्थ होते हैं। बड़े-बड़े पुजारियों और महन्तों की लीला सुनकर रोएँ खड़े होजाते हैं। लेखक के ग्राम के आस-पास देहातियों में आमतौर पर यह क़िस्सा मशहूर है, कि कोई अपनी ख़ूबसूरत-औरत को लेकर अयोध्या हर्गिज़ न जाय। इसका कारण, कतिपय पुजारियों की भावनाएँ हैं। यह सब कुछ होने पर भी जो लोग मन्दिरों की आवश्यकता समझते हैं, उन्हें अन्धविश्वास के शिकार से अधिक और क्या कहा जावे ?

मन्दिर की ओट में वड़े विचित्र-विचित्र गपोड़े चलाकर, लोगों से धर्म के नाम पर इन वातों पर विश्वास करवाया गया है। केरल-प्रान्त में, देवियों की पत्थर या धातु की मूर्तियाँ रजस्वला होती हैं ! और इस वात का पता पुजारी को लग जाता है। अयोध्या की मूर्तियों को गर्मी लगती है, इसलिये उन पर पंखे चलाये जाते हैं। मथुरा-वृन्दावन आदि की मूर्तियाँ हज़ारों-मन पकवानों और मिठाइयों का नैवेद्य माँगती हैं। भक्तलोग यह सामान प्रस्तुत करते और यह विश्वास करते हैं, कि भगवान् इन पदार्थों को खाते हैं। पत्थर या धातु की मूर्ति के सम्बन्ध में ऐसी गप्पों को अन्धविश्वासियों के अतिरिक्त और कौन मान सकता है ? मंदिरों की पूरी-लीला का वर्णन करने के लिये, एक मोटी-सी पुस्तक लिखने की ज़रूरत है ! अस्तु।

मन्दिरों के बाद, तीर्थों का नम्बर है ! जब, सारे भारतवर्ष में मन्दिर बन गये, तब नियमानुसार कुछ मन्दिरों को विशेष-प्रतिष्ठा मिलने लगी। समय-समय पर, विभिन्न मन्दिरों को

प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और आगे चलकर वह सारा क्षेत्र ही पूजा जाने लगा, जहाँ वे मन्दिर थे। जब दोस्तलोगों ने देखा, कि इस जगह बहुत-सी भेड़ें आती हैं, तो उन्होंने उस मन्दिर के आस-पास और भी बहुत-से मन्दिर बना लिये। बस, फिर क्या था? वह तीर्थस्थान बन गया। कहावत मशहूर है, कि "दूर के ढोल सुहावने होते हैं"। इसी के अनुसार, लोगों को दूर के तीर्थस्थानों का अधिकाधिक महत्व जान पड़ने लगा और वे अपनी सारी शक्ति एवं सम्पत्ति का नाश करके भी उन तीर्थों के दर्शन को जाने लगे। उन्होंने यह नहीं सोचा, कि आख़िर जिस पत्थर से चक्की बनी है, जिस पत्थर का हमारा सिल-लोढ़ा और ऊखल है, वही पत्थर तो उस तीर्थ में भी रक्खा है! फिर वहाँ के पत्थर का इतना महत्व क्यों? आज भी हम देखते हैं, कि उसी अन्धविश्वास से प्रेरित होकर ऐसे-ऐसे बूढ़े—जो थोड़ा चलने में भी कष्ट अनुभव करते हैं—तीर्थों की तरफ़ पचते-मरते दौड़े जाते हैं!

और तीर्थों में होता क्या है? पण्डे-पुजारी एवं महन्तलोग, यात्रियों की आँखों पर अन्धश्रद्धा की पट्टी बाँधकर उन्हें ख़ूब मूँडते तथा उस धन से दिल खोलकर रण्डीबाज़ी और शौक़े शराब का ख़र्च चलाते हैं। जब कभी कोई 'शिकार' फँस गया, तब अपनी तरफ़ से वे किसी प्रकार की शराफ़त नहीं करते। अभी, कुछ ही दिन पूर्व, एक शहर में गंगा-स्नान के लिये आये हुए एक युवक को, भाँग में धतूरा पिलाकर पण्डों ने उसकी स्त्री को क़ब्ज़े में करना चाहा। लेकिन स्त्री किसी तरह निकलकर पुलिस की शरण में पहुँची और पुलिस ने उसके पति को अस्पताल तथा पण्डों को जेल भिजवाया। इस तरह की न-जाने कितनी घटनाएँ रोज़ सारे देश में धर्म के बच्चे तीर्थ की यात्रा के नाम पर होती हैं।

वहुत-से लोगों का अनुभव है, कि ये तीर्थस्थान वदमाशी के केन्द्र हैं। जहाँ किसी हिन्दू-विधवा के गर्भ रहा, कि फ़ौरन ही घर के लोग उसे लेकर तीर्थ-यात्रा को चल देते हैं। कट्टर-हिन्दुओं के परिवार में जहाँ कोई विधवा अपनी सीमा से वाहर नज़र उठाती देखी गई, तहाँ वे उसे तीर्थ-यात्रा के वहाने लेजाकर मेले में छोड़ आये। काशी, प्रयाग आदि के मेलों में अक्सर ऐसी घटनाएँ होती देखी गई हैं। ऐसी स्त्री, यदि किसी भले-आर्यसमाजी के हाथ पड़ गई, तव तो ठीक है, वर्ना ठोकरें खाती-खाती एक दिन वह वेश्या वनने को मजवूर होजाती है। मतलब यह, कि ये तीर्थ, लोगों के अत्याचार के क़िले हैं। इनकी ओट में, जो चाहें सो होसकता है। वड़े-वड़े तीर्थों के मेलों में, साधारणतया स्त्रियों की जो वेइज़्ज़ती होती है, उसे कौन नहीं जानता? इन सब वातों को देख और जानकर भी जो लोग तीर्थों पर श्रद्धा रखते या उन्हें अच्छा मानते हैं, उन्हें क्या कहा जावे?

तीर्थों के वाद, साधुओं का नाम याद करना भी आवश्यक है। यों तो, साधु शव्द का शाव्दिक-अर्थ "शरीफ़" है। लेकिन, व्यवहार से साधु शव्द का अर्थ आवारा, मुफ़्तख़ोर, गँजेड़ी-भँगेड़ी, लण्ठ, ज़िद्दी, क्रोधी, असहिष्णु और कहीं-कहीं वदचलन या वदमाश भी निकलता है। मनुष्य के मस्तिष्क की शक्ति जिस समय चीण होजाती है और वह अन्धविश्वास के गहरे-गर्त्त में जा गिरता है, तव जिस वात में उसका अन्धविश्वास हो, उसके सम्वन्ध में उससे चाहे जो मंज़ूर करवा लिया जावे। जिन लोगों की वुद्धि पर धर्मसम्वन्धी अन्धविश्वास सवार था, उन्होंने एक ऐसी श्रेणी के लोगों की आवश्यकता स्वीकार कर ली, जो मुफ़्त में माल खावें और राख

लगाकर या कपड़े रँगकर घूमें तथा लोगों को संसार के मिथ्या होने का उपदेश दें। सम्भव है, पहले योग्य-व्यक्ति ही इसमें रहे हों, लेकिन आजकल तो साधुओं के नाम पर ऐसे-ऐसे लुंगाड़े माँगते-खाते हैं, जिन्हें कमाकर खाने में कष्ट अनुभव होता है या किसी डाके अथवा ख़ून के जुर्म में शामिल होने के कारण जिन्हें पुलिस से भय रहता है। अन्धविश्वास की अपार-शक्ति के हम क़ायल हैं, जिसके कारण भारतवर्ष में ५६ लाख से भी अधिक ऐसे मुफ़्तख़ोर पल रहे हैं। और सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है, कि इनके आचरणों को देखते हुए भी लोग इन्हें खिलाने में पुण्य होना मानते हैं।

इन साधुओं के वास्तविक-जीवन का दृश्य, कुम्भ के अवसर पर इलाहाबाद में देखा गया था। बड़े-बड़े हाथीवालों से लगाकर केवल चिमटे और चिलमवाले सभी वहाँ आये थे। कई साधुओं को स्वयं हमने अपने नेत्रों से स्त्रियों के साथ छेड़-छाड़ करते देखकर डाटा था। यही नहीं, जिस समय साधुओं ने सेवा-समिति के कैम्प पर आक्रमण किया और निस्पृह-लोकसेवकों पर ढेले-लकड़ी आदि फेंके, तब उनकी साधुता का पता अच्छी तरह लगा था। इसी तरह की हज़ारों-शिकायतें प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय के साधुओं की हैं। बड़े-बड़े महन्तों और गद्दीधरों तथा बड़ी आयवाले साधुओं का काम रण्डियों एवं बेड़िनों के बिना तो कभी चलता ही नहीं, यह एक आम-मशहूर बात है। विद्या और विवेक में ये लोग कैसे होते हैं, यह सभी जानते हैं। मिस मेयो ने, अपनी मदर-इण्डिया में दो साधुओं के चित्र छापकर मानों हमारे अन्ध-विश्वासपूर्ण धार्मिक-जीवन के ढोंग की पोल का दिवाला निकाल दिया है। इनमें से, एक साधुजी डेढ़-हाथ लम्बी चिलम लिये

पी रहे हैं और दूसरे बड़ी-भारी जटा बाँधे एक लँगोटी लगाये अपना हाथ लम्बा करके कुछ कह रहे हैं। खेद !

सारांश यह, कि धर्म के नाम पर हम ढोंगियों के एक बहुत-बड़े समूह का पालन कर रहे हैं। जब स्वयं धर्म ही ढोंग है, तो उसके नाम पर टुकड़ा माँगकर खाने और बदमाशी करनेवाले साधु भले-आदमी कैसे कहे जासकते हैं ? लोगों को, यदि ज़रा भी विवेक हो और वे उससे काम लें, तो विना विलम्ब किये मालूम होजावेगा, कि सारे संसार के और सभी धर्मों के साधु ढोंगी हैं। इन ढोंगियों में से कुछ पेटभरे हैं, कुछ प्रतिष्ठा के इच्छुक हैं, कुछ स्वार्थी हैं और शेष अव्वल-दर्जे के बदमाश हैं। क्या हम यह आशा करें, कि इस बीसवीं-सदी के वैज्ञानिक-युग में लोग अपनी इस अन्धविश्वासजन्य-भूल को अनुभव करके भविष्य में इस ठगों के-से गिरोह को मानना छोड़ देंगे ?

धर्म से पैदा होनेवाले अन्धविश्वास ने, पद-पद पर मनुष्यों को धोखा दिया है। अभी थोड़े दिन पूर्व, एक पकरिया का बड़ा-भारी पेड़ आँधी के कारण उखड़ गया। लोगों ने, उसकी डालियाँ काट लीं। उसका तना बड़ा वज़नदार था और दूसरी तरफ़ का वज़न हट चुका था, एवं वह ऐसी पृथ्वी पर पड़ा था, जहाँ से उसका एक तरफ़ गिर पड़ना आवश्यक था। योगायोग से वह पकरिया 'गुरुत्व' वाले सिद्धान्त के अनुसार तने की तरफ़ गिरी और अपने पहले गड्ढे में फिर ज्यों-की-त्यों खड़ी होगई। बस, फिर क्या था ? लोगों ने, उस वृक्ष की पूजा शुरू कर दी और मनों मिठाई उस वृक्ष पर प्रतिदिन चढ़ने लगी !

एक मुसलमानी-गाँव की एक गड़ही में एक ऐसा हिन्दू

गिर पड़ा, जिसे जूड़ी आती थी। गड़ही से निकलने के बाद उसे जूड़ी नहीं आई। बस फिर क्या था, सैकड़ों जूड़ीवाले उसमें नहाने लगे और तबतक नहाते रहे, जबतक एक आर्यसमाजी-सज्जन ने उन लोगों को धिक्कारते हुए यह नहीं बतलाया, कि इसी गड़ही में मिल्कीलोगों के घरों की मोरियाँ गिरती हैं! सारांश यह, कि अन्धविश्वास ने उस मल-मूत्र में भी स्नान करवाया और वह भी बड़े-बड़े तिलकधारियों को! अन्धविश्वास की महिमा अपार है!

अंधविश्वास में फँसी हुई जनता को बुद्धू बनाने के लिये दोस्तलोग कोई नया-क़िस्सा चालू कर देते हैं, जो दूर-दूर तक फैलकर लोगों को बनाता रहता है। कभी किसी को कोई ऐसी देवी मिलती है, जिसके एक कान में ताला और दूसरे में मशाल बँधी होती है और वह उस व्यक्ति से कहती है, कि जो श्रावण की पूर्णिमा को दीपावली न जलावेगा, उसके घर में सब मर जावेंगे और ताला लटक जावेगा। कभी किसी को सात-देवियाँ सड़क पर खेलती मिलती हैं और उस शख्स के द्वारा संसार को यह सन्देश देती हैं, कि जो आदमी नाग-पंचमी का त्यौहार पंचमी के बजाय चौथ को न मनावेगा, वह ज़िन्दा न रहेगा। यह संवाद, ग्रामों में पहुँचते ही तहलका मच जाता है और लोग इस प्रकार की किंवदन्तियों पर विश्वास करके उसी के अनुसार कार्य करने लगते हैं। यदि, उनके हृदय में देवी-देवताओं का झूठा-भय न होता, वे पार-लौकिक-अंधविश्वास में न उलझे होते, तो क्या कभी भूलकर भी ऐसी गप्पों पर विश्वास कर सकते थे? कदापि नहीं!

पारलौकिक-अंधश्रद्धा का प्रभाव, क़ानूनों की कड़ाई से कुछ-कुछ दब भी गया है। ऐसी दबी हुई बातों में से, सती-प्रथा प्रधान है। किसी पुरुष की मृत्यु होने पर उसकी स्त्री

उसके साथ जले, यह पाशविकता हमारे यहाँ प्रचलित होगई थी, इसे मानना पड़ता है। ऐसे अधम-कृत्यों को, उस समय के लोग तो महान्-धर्म मानते ही थे, लेकिन इस बीसवीं-सदी के कुछ लोग तथा कुछ पत्र-सम्पादक बड़ा महत्वपूर्ण-कार्य मानते एवं बड़े गर्व से उस 'सती' का वर्णन पत्रों में छपवाते तथा छापते हैं। ऐसे स्त्री-पुरुष दोनों ही स्वर्ग में जाकर मिलेंगे, इस अन्धश्रद्धा के कारण इस पशुता का जन्म हुआ था। पति के मरने पर पत्नी अग्नि में जीवित ही जले, इससे बढ़कर पागलपन और क्या होगा ? यह, धर्मजनित-अन्ध-विश्वास, मनुष्यता का विघातक और हमारी मूर्खता का परिचायक है ! पढ़े-लिखे लोगों का कर्त्तव्य है, कि वे मनुष्यता की रक्षा के लिये, पति के साथ जलनेवाली स्त्री की खूब निन्दा करें और जनता में इस पशुता के विरुद्ध रोष की भावना उत्पन्न करें।

धर्म से पैदा होनेवाले अंधविश्वास की कथा गाने में यदि सचमुच ही शारदा होतीं, तो वे भी असमर्थ रहतीं। ज़रा और भी देखिये। प्राचीन हिंदू-समाज में एक प्रथा थी और अधिक-श्रद्धालुओं में वह कहीं-कहीं अब भी देखी जाती है। वह यह, कि अपनी वर्तमान-पत्नी को जो व्यक्ति इस जन्म में दान कर देता है, वह दूसरे-जन्म में फिर वही पत्नी पाता है। इसके लिये लोग तीर्थों के पण्डों से पहले तय कर लेते और पत्नी उन्हें संकल्प कर चुकने के बाद निश्चित्-रक़म देकर उसे वापस ख़रीद लेते हैं। एक बार का क़िस्सा सुना जाता है, कि एक पण्डे ने उस महिला के सौंदर्य पर मुग्ध होकर उसे वापस बेंचने से इनकार कर दिया। फलतः, महिला छत पर से कूद पड़ी और उसकी मृत्यु होगई। तभी से यह प्रथा कम हुई है। इससे बढ़कर पशुता और क्या होसकती है, कि अपनी स्त्री ही दान कर दी जावे ?

श्रद्धे ! श्रद्धे ! तू जब अंधों के पल्ले पड़ती है, तब वे बिना सींग-पूँछवाले बेचारे कहीं के नहीं रह जाते।

पुस्तक, प्रेस में दे चुकने के बाद, जब यह छप रही थी, तब ता० २४ अगस्त १९३३ ई० के दैनिक-प्रताप में हमें एक विचित्र-संवाद पढ़ने को मिला। हम तो समझते थे, कि केवल अशिक्षित-मनुष्य ही आँखों के अंधे होते हैं, लेकिन यह संवाद पढ़कर हमारा यह विश्वास होगया, कि पढ़े-लिखे भी वैसे होसकते हैं। सूर्य-ग्रहण के अवसर पर, कुरुक्षेत्र में एक राजा साहब ने अपनी स्त्री पण्डे को दान करके, फिर उसे दसहज़ार-रुपये में ख़रीद लिया। हमें, उन राजा साहब की बुद्धि पर तरस खाना पड़ता है। इस बीसवीं-सदी में भी ऐसे रईसलोग जिस भारत में हैं, उस भारत की उन्नति हो तो कैसे ? यदि, मिस मेयो को यह कथा विदित होजाय, तो शायद वह फिर एक "Slaves of the Gods" (देवताओं के गुलाम) नामक पुस्तक लिखे। अन्धविश्वास की महिमा, आस्तिकों के कल्पित-ईश्वर से कई-गुनी अधिक है। बलिहारी है इस सिद्धान्त की, जो स्त्री को दान करवा सकता है।

पता नहीं, हमारे समाज-सुधारकलोग किस नींद में सोते हैं। जिस क़ानून के अनुसार अपनी स्त्री बेंचनेवाले पर मुक़दमा चल सकता है, उसी के अनुसार इन राजा साहब पर क्यों नहीं चलवाते ? स्त्री बेंची जाय या दान की जाय, दोनों समान हैं ! दाम लें या न लें, क़ब्ज़ा तो दे देते हैं ! धर्म के सुधार की आशा क्या अब भी सम्भव है ? कदापि नहीं। ख़ैर।

और भी मज़ा देखिये। प्राचीन-काल में, काशी में करवत लेने की प्रथा थी। जो लोग शीघ्र ही मोक्ष जाना चाहते थे, वे अपना शरीर करवत से खड़ा-खड़ा चिरवा डालते थे ! इसी

तरह एक शिला ओङ्कारेश्वर में है, जिस पर लोग औंधे-सिर पहाड़ पर से गिरकर मोक्ष का मार्ग साफ़ करते थे। ऐसे 'सुन्दर-सुन्दर' कार्य सिवा धर्मजनित-अन्धविश्वास के और कौन करवा सकता है ?

अन्धविश्वास में फँसी हुई जनता को, परलोक की हुण्डी देने का-सा प्रलोभन देकर, ढोंगियों ने क्रिया-कर्म यानी मृतक के पश्चात् पिण्डदान के साथ दसवें-दिन सैकड़ों-हज़ारों रुपयों का मालताल दान करवा लेने का भी एक तरीक़ा जारी करवा दिया। लोगों को चकमा यह दिया गया, कि ये सभी वस्तुएँ परलोकगत-आत्मा को प्राप्त होजावेंगी। जब परलोक या आत्मा है ही नहीं और यदि ये चीज़ें होतीं भी, तो भी यहाँ दान की हुई वस्तु किसी भी तरह वहाँ नहीं पहुँच सकती थी, तब इस दान का क्या मूल्य है ? क्या भोले-भाले लोगों को धोखा देना और किसी चीज़ का नाम है ? कुछ पढ़े-लिखे लोग भी इसे सत्य मानते हैं, इसलिये वे ही सबसे अधिक दया के भाजन हैं ! अन्धविश्वास की महिमा ! तू धन्य है !

इसी तरह के हज़ारों-अन्धविश्वास धर्म के नाम पर प्रचलित हुए और उनमें से कुछ या कुछ का अवशेष अब भी समाज में मौजूद है। वाममार्ग की उत्पत्ति भी ऐसे ही अन्ध-विश्वास के कारण हुई थी और उसी के प्रभाव से अश्वमेध की वह लीला हुई, जिसका वर्णन महीधराचार्य ने अपने भाष्य में किया है ! वाममार्ग की शाखाएँ यत्र-तत्र अब भी मौजूद हैं और चुपके-चुपके अपने शिष्य बढ़ाती हैं। उनकी दृष्टि में पञ्च मकार यानी मांस, मदिरा, मैथुन, मीन और मुद्रा ही स्वर्ग या मोक्ष हैं ! वाममार्ग के कुछ प्रधान-चिन्ह बहुत-से लोगों की दृष्टि में अब भी पूजनीय हैं। इनमें से,

एक तो योनिसहित शिवलिंग की पूजा है, जो प्रायः सारे भारत में प्रचलित है और दूसरा है जगदीश का मन्दिर ! शिवजी की मूर्ति की पूजा नहीं होती, उनके लिंग की होती है ! कारण, कि वाममार्गियों के यहाँ एक युवक तथा युवती के गुप्तांगों की पूजा होती थी। लोगों पर अन्धविश्वास का भूत इस तरह सवार था, कि उन्होंने बिना सोचे-समझे इस अज्ञानपूर्ण-कार्य को अपनाया और आधे से अधिक हिन्दू अबतक उसकी पूजा कर रहे हैं। (हाय री हिन्दू-जाति ! इतनी अधम-भावनाओं की मौजूदगी में भी तेरा अस्तित्व संसार में है !) जगदीश या जगन्नाथपुरी का मन्दिर प्रत्यक्ष ही वाममार्गियों का हेड-ऑफिस था, इसे कौन न मानेगा ? मन्दिर की दीवारों पर जो स्त्री-पुरुष संयोग के नंगे-चित्र खुदे हैं, वे क्या चिल्ला-चिल्लाकर इसकी पुष्टि नहीं करते ? यदि वह वाममार्ग का मन्दिर न होता, तो क्या वे ही चित्र खोदे जाते ? और भी देखिये। सभी मन्दिरों में राधाकृष्ण या सीताराम की मूर्तियाँ हैं। जगन्नाथपुरी में एक ओर कृष्ण बैठे हैं, दूसरी तरफ़ बलराम और बीच में सुभद्रा ! यह कौन-सा तरीक़ा है ? क्या वाममार्गियों के उस सिद्धान्त की पुष्टि के लिये, कि भैरवीचक्र में तुम्हारे हिस्से में जो भी पड़ जाय, फिर वह चाहे तुम्हारी माँ-बहिन ही क्यों न हो, उसके साथ तुम्हें संभोग करना चाहिये—यह रचना नहीं की गई है ? क्या इन मूर्तियों को दिखलाकर वाममार्गी अपने शिष्यों को यह न समझाते रहे होंगे, कि जब श्रीकृष्ण जैसे भगवान् भी अपनी बहिन को बग़ल में लिये बैठे हैं, तो तुम्हें अपनी बहिन-बेटी से बदमाशी करने में क्या आपत्ति है ? कर्मयोगी-कृष्ण के नाम पर यह कैसी लीला ढोंगियों ने फ़ैलाई है। जगन्नाथपुरी, वाममार्ग

का केन्द्र था, इसका एक और भी प्रमाण है। सभी तीर्थों में शुद्धतापूर्वक भोजन दिया जाता है, किन्तु जगन्नाथपुरी में जूठा एवं कभी-कभी जूठे मिट्टी के सिकोरों में दे दिया जाता है। वाममार्ग का यह नियम है, कि भैरवीचक्र से बाहर निकलने पर सब जातियाँ पृथक् हैं, भैरवीचक्र के भीतर सब जातियाँ ब्राह्मण हैं। इसलिये चक्र के भीतर सब लोगों को एक-दूसरे का जूठा खाना चाहिये, फिर वह चाहे भङ्गी हो या ब्राह्मण किंवा नीरोग हो अथवा राजयक्ष्मा का रोगी ! ठीक यही दशा जगन्नाथपुरी की भी है। बाहर, जो लोग दूसरे की छाया पड़ने से अशुद्ध होजाते हैं, वे पुरीरूपी चक्र में प्रवेश करते ही सबलोगों के साथ और पण्डों का जूठा-भात खाने में किंचित भी नहीं हिचकिचाते। सबलोगों के साथ बैठकर खाने की—यदि वह केवल अन्धविश्वास तथा श्रद्धा के कारण न किया गया हो—तो हम सदैव प्रशंसा ही करेंगे, लेकिन सबलोगों का जूठा खानेवाली फिलॉसफी हमारी समझ में नहीं आती। इसे तो हम प्रत्यक्ष ही वाममार्ग की छाया कहेंगे।

इस प्रकार की हज़ारों-बातें हैं, जो केवल अन्धविश्वास के कारण हमलोगों के यहाँ मानी जाती हैं। इस अन्धविश्वास को धर्म ने जन्म दिया है। यदि धर्म का ढोंग न प्रचलित होता, तो ऐसे अन्धविश्वासों का कभी जन्म ही नहीं होसकता था। हम देखते हैं, कि जिस-जिस क्षेत्र में धार्मिक-विचारों का स्पर्श भी होगया है, वहाँ अन्धविश्वास की नदियाँ बह रही हैं। और जिन क्षेत्रों से धर्म दूर रहा, वहाँ अन्धविश्वास का जिक्र भी नहीं है। जो लोग, समाज को ऐसे-ऐसे अन्धविश्वासों के गर्त्त से निकालना चाहें, उन्हें उचित है, कि वे धर्मरूपी ढोंग को संसार से विदा करने का प्रयत्न करें।

धार्मिक-मतभेद से हानि.

यदि, संसार में केवल एक ही धर्म होता, तो वह या तो अबतक निर्मूल होगया होता, या उसका कोई स्थायी-प्रभाव न पड़ने पाता। धर्म को जो इतना अधिक महत्व दिया गया है, उसका जनक धार्मिक-मतभेद है। हम, पहले बतला आये हैं, कि हज़ारों-लाखों शिक्षित-आदमी अपने धर्म को सत्य मानकर उसका पालन केवल इसलिये करते हैं, कि अन्य धर्मावलम्बी शिक्षित-समुदाय, अपने धर्म से अत्यधिक-प्रेम करता है। यदि, एक ग्रेजुएट-आर्यसमाजी वेद को ईश्वरकृत मानकर उसकी प्रशंसा और जैन-ग्रन्थों की निन्दा करता है, तो कोई कारण नहीं, कि एक वैसा ही जैनी, अपने ग्रन्थों को सत्य मानकर वेद की निन्दा न करे! जब यह स्थिति है, तो फिर आपस में मतभेद पड़कर विरोध क्यों न बढ़ेगा? बस, यही धार्मिक-मतभेद से होनेवाली हानि का मूल-स्वरूप है।

हम, प्रारम्भ ही से धार्मिक-मतभेदों के कारण झगड़े होते देखते हैं। बौद्धों और ब्राह्मणों के धार्मिक-मतभेद ने, त्योंही जैनियों और ब्राह्मणों के धार्मिक-मतभेद ने, तात्कालिक-भारतवर्ष को मिट्टी में मिला दिया था! जो शक्ति, देश की उन्नति में लगनी चाहिये थी, वह शास्त्रार्थ और एक दूसरे को नीचा दिखलाने में लग रही थी। एक धर्मवाले, दूसरे धर्मवालों के सर्वनाश के लिये सभी उपाय करते और अपनी शक्ति भर कोई बात उठा न रखते थे। बौद्धों ने ब्राह्मणों को परेशान किया और ब्राह्मणों ने बौद्धों को।

जैनियों ने ब्राह्मणों को कोल्हू में डालकर पेलवाया और ब्राह्मणों ने जैनियों को ! और यह सारा काण्ड हुआ क्यों ? केवल इसलिये, कि लोग उस पंथ को मानना छोड़कर हमारे पन्थ को मानें। यद्यपि, उस पन्थवाले व्यक्ति के इस पन्थ में आजाने से किसी प्रकार का हानि-लाभ न था, लेकिन धर्माचार्यों में, धार्मिक-सिद्धान्तों के मतभेद के कारण जो ज़बरदस्त-प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न होगई थी, उसमें विजय प्राप्त करना भी तो आवश्यक था न ? यद्यपि, ये सभी धर्माचार्य केवल ढोंगी थे, झूठे पारलौकिक-गीत गाते थे, फिर भी अन्धविश्वास के कारण जनता इनके चक्कर में फँसी थी और इस मतभेद को दूर करने के स्थान पर उसे बढ़ाने में ढोंगी-धर्माचार्यों की सहायता करती थी।

उस काल में, बड़े-बड़े विद्वान् और तार्किक होगये हैं। लेकिन, उन सबकी शक्ति केवल पारस्परिक-विरोध की वृद्धि करने में ही ख़र्च हुई थी। बौद्धों और ब्राह्मणों ने पारस्परिक-खण्डन के लिये पचासों युक्तिपूर्ण तथा खण्डनात्मक-ग्रन्थ बनाकर अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया था। औरों की कौन कहे, शङ्कराचार्य तथा कुमारिलभट्ट जैसे उद्भट-विद्वान् भी इसी मतभेदजन्य-पक्षपात के चक्कर में फँसकर अपना मूल्यवान्-जीवन नष्ट कर गये। यदि, ये लोग धार्मिक-मतभेद के चक्कर में न फँसते, तो कौन कह सकता है, कि इतनी बड़ी-बड़ी शक्तिवाले विद्वानों से समाज और देश को कितना भारी-लाभ पहुँचता। मतभेद के ही कारण, बुद्ध और महावीर जैसे प्रभावशाली-व्यक्तियों के जीवन से भी देश को विशेष-लाभ नहीं पहुँच सका। यदि, धार्मिक-मतभेद न होता, तो क्या इन दोनों महापुरुषों का जीवन इस तरह देश के लिये अनुपयोगी सिद्ध होसकता था ? कदापि नहीं।

यह मतभेद, हिन्दू-जाति के लिये विप ही साबित हुआ। जो लोग, पहले एक समाज-सूत्र में बँधकर चलते थे, वे ही दो भिन्न-संस्कृतिवाले समझे जाने लगे। जैनियों ने कहा—"ब्राह्मण नीच होते हैं, इसलिये तीर्थङ्कर कभी उस कुल में नहीं पैदा होते"। ब्राह्मणों ने कहा—"जैनी बड़े अधमाधम हैं। यदि हाथी के पैर के नीचे दब जाने का मौक़ा आवे, तो दब जाना श्रेष्ठ है, किन्तु भागकर जैनियों के मन्दिर में आश्रय लेना ठीक नहीं।" बस, दोनों धर्मवाले, भिन्न-संस्कृति के माने जाने लगे। इससे पूर्व, दोनों एक संस्कृति माननेवाले थे। लेकिन, धार्मिक-मतभेद ने उन्हें एक-दूसरे का सर्वथा विरोधी बना दिया। यही नहीं, इसी मतभेद ने एक-दूसरे को तथा उनके धर्मों को नीच मानने के भाव भी उत्पन्न कर दिये।

आगे चलकर, जब मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण तथा क़ब्ज़ा किया, तब उन्होंने भी वही रुख़ अख़्तियार किया। इनका ढंग अबतक के सब ढंगों से अधिक भीषण था। अबतक के सब धर्मवाले तो केवल दूसरों से द्वेष मानकर उनकी निन्दा ही करते थे, लेकिन इन्होंने अपने धर्म से मतभेद रखनेवालों को तलवार के घाट तक उतार देने का नियम जारी किया। इनकी वर्बरता और ब्राह्मणों की कट्टरता के कारण भारत में इन दोनों संस्कृतियों में स्थिर-मतभेद उत्पन्न होगया, जो आजतक चला आता है। एक ने कहा—"इस्लाम को न माननेवाला काफ़िर, ख़ुदा का गुनहगार है और उसका क़त्ल भी वाजिब है"। दूसरे ने कहा—"नहिं नीचो यवनात्परः" अर्थात्—मुसलमान से बढ़कर और कोई नीच ही नहीं होता। बस, धार्मिक-मतभेद का गड्ढा और भी अधिक गहरा होने लगा। मुसलमानों के साथ जितना ज़बर्दस्त धार्मिक-मतभेद था, उतना ज़बर्दस्त और

किसी भी धर्म से शायद हिंदुओं का न था। दोनों जातियों में, परस्पर घृणा की भावना इसी मतभेद के कारण दिनोदिन अधिकाधिक पुष्ट होती गई। आगे चलकर, जो लोग मुसलमान हुए, वे हिंदू-संस्कृति के सर्वथा-विरोधी वन जाने को मजबूर हुए। यदि, धार्मिक-मतभेद जोर न पकड़ता, तो क्या वाहर से आये हुए डेढ़-मुट्ठी मुसलमानों पर भारतवर्ष के मुसलमानों की पूर्व हिंदू-संस्कृति का कोई प्रभाव न पड़ता ? लेकिन यहाँ तो वह दशा हुई, कि जो कोई भूल से भी मुसलमानों का छुआ पानी पी गया, वह यवन होगया और इस तरह उसकी भर्त्सना की गई, कि लज्जित होकर उसने भारतीय-संस्कृति से मुँह मोड़, अपने-आपको अरवी-संस्कृति में सान लेना ही श्रेष्ठ माना। इसी तरह ज्यों-ज्यों तात्कालिक-हिन्दुओं की मूढ़ता के कारण लोग भारतीय-संस्कृति छोड़ने को मजबूर हुए, त्यों-ही-त्यों एक ऐसा दल तयार होता गया, जो अपनी सारी शक्ति से यहाँ की संस्कृति का विरोध करने में गर्व अनुभव करने लगा। आज, आमतौर पर देखा जाता है, कि मुसलमानलोग एक अस्तावा भरकर टट्टी जाते हैं। थोड़ा पानी वहाँ खर्च होता है, शेष से लौटकर हाथ-पैर धोते और पी लेते हैं। यह तो सभी मानते हैं, कि विदेशों से नाममात्र को मुसलमान यहाँ आवाद होने आये थे। शेष सव भारतीय हैं। लेकिन, उपरोक्त व्यवहार प्रायः सव करते हैं। कारण, कि धार्मिक-मतभेद के कारण हिन्दू-संस्कृति उन्हें अपने पास नहीं आने देती थी और न वे ही घृणा करनेवाले हिन्दुओं का कोई गुण लेना चाहते थे। ऐसी दशा में, उनके लिये अरव की सभ्यता की शरण लेना आवश्यक था और अरवलोग इसी तरह सफाई की अधिक चिन्ता न

करके एक ही अस्तावे में भरे हुए पानी से घर का सारा काम चला लेते थे, जो भारतीय-मुसलमानों ने भी सीखा। यदि, धार्मिक-मतभेद का प्राबल्य न होता, तो क्या जिस तरह हूणों, शकों, सीथियनों आदि को भारतीय-सभ्यता की शिक्षा दे दी गई थी, उसी तरह इन्हें नहीं दी जासकती थी?

इन दोनों जातियों में, धार्मिक-मतभेद आज भी बना है। तेईस-करोड़ हिन्दू एक तरफ़ हैं और आठ-करोड़ मुसलमान दूसरी तरफ़। दोनों जातियों के धार्मिक-नेता, इस बीसवीं-सदी में भी इस बात का प्रयत्न करते हैं, कि इन दोनों जातियों में अधिकाधिक भेदभाव उत्पन्न करवा दिया जावे। मुसलमानों को भय है, कि हिन्दू हमें खाजावेंगे और हिन्दुओं को मुसलमानों से यही ख़ौफ़ है। इस भय का कारण और कुछ नहीं; केवल धार्मिक-मतभेद है। यदि, धर्म नामक चिड़िया दुनिया से उड़ जाय, तो न धार्मिक-मतभेद रहे, न किसी को किसी से भय ही। अस्तु।

मुसलमानों ने तो धार्मिक-मतभेद होने पर क़त्ल कर डालने का तरीक़ा जारी किया था, लेकिन ईसाई उनसे सैकड़ों क़दम आगे ही रहे। उनके यहाँ, धार्मिक-मतभेद के कारण किस तरह मनुष्यता का नाश हुआ, किस तरह लाखों-मनुष्य जीवित ही अग्नि में झोंक दिये गये, किस तरह लोगों को ज़रा-ज़रा सी बात पर फाँसियाँ दी गईं और किस तरह पशुता का नंगा-नाच हुआ था, यह सब क़िस्सा जानने की इच्छा रखनेवालों को, सस्ता-साहित्य-मण्डल अजमेर से 'नरमेध' नामक पुस्तक मँगवाकर पढ़नी चाहिये। उसे देखने पर पाठकों को ईसाईधर्म में होनेवाले मतभेद से जो-जो काण्ड हुए हैं, उनका बहुत-कुछ पता लग जावेगा।

यूरोप तथा अन्यान्य-देशों में, केवल धार्मिक-मतभेद के कारण बड़े-बड़े युद्ध हुए हैं, जिनमें लाखों-मनुष्यों की जानें गई हैं।

जबसे संसार में धार्मिक-मतभेद का बीजारोपण हुआ है, तब से आजतक अधिकांश लोगों की शक्तियाँ इसी में लग रही हैं। इस कीचड़ में फँस जाने के कारण, लोग और-और कार्य नहीं कर पाते। बड़े-बड़े विद्वान्, जिनके द्वारा देश और समाज का बहुत-कुछ भला होसकता था, इसी कीचड़ में फँसे देख पड़ते हैं। आर्यसमाजियों तथा सनातन-धर्मियों और आर्यसमाजियों तथा जैनियों या मुसलमानों के बीच जो पैम्फलेटबाजी होती रहती है और बहस-मुबाहिसे में जितना समय, शक्ति और धन खर्च किया जाता है, वही सब यदि देश की उन्नति में लगता, तो कितना अच्छा था? लेकिन, धार्मिक-मतभेद से ही उन्हें फ़ुरसत नहीं मिलती, आगे की कौन सोचे? जहाँ देखो, ऐसी पुस्तकों और मुबाहिसों की भरमार है। इन सब में से, कोई भी भला-आदमी यह नहीं सोचता, कि जिस ईश्वर या मजहब के नाम पर हम लड़ रहे हैं, वह है क्या चीज़? यदि, इनमें से किसी एक ने भी पारलौकिक-विषयों की पोल जान पाई होती, तो यह स्थिति कदापि न रहने पाती। लेकिन जानता कौन, जबकि अन्ध-विश्वास की पट्टी सबलोगों की आँखों पर बँधी है?

इसी धार्मिक-मतभेद के कारण, भारत में साम्प्रदायिक-दंगे होते हैं। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच, कानपुर, कलकत्ता, बम्बई आदि स्थानों पर जो बड़े-बड़े दंगे हुए हैं और जिनमें दोनों पक्षों की ओर से दिल खोलकर पशुता का नंगा-नाच किया गया है, वे सब इसी मतभेद के प्रताप से हुए थे।

यदि धर्म का प्रश्न ही न होता या दोनों धर्मों के बीच मतभेद न होता, तो क्या कभी ऐसी हैवानियत के दृश्य देखने को मिल सकते थे ? कदापि नहीं।

धर्माचार्यों का यह स्वभाव ही है, कि जहाँ किसी अन्य-धर्मवाले से उनका मतभेद हुआ, तहाँ वे अपने अनुयाइयों के हृदय में दूसरे धर्मों के प्रति विद्वेष की अग्नि भड़काने लगते हैं। यह प्रथा प्रारम्भ से आजतक समानरूप से चली आरही है। इसका अन्त, तबतक सम्भव नहीं है, जबतक संसार से धर्म नामक ढोंग का अन्त न होजाय! न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।

धार्मिक-मतभेद ने, मनुष्य के हृदय में कितना जबरदस्त-पक्षपात पैदा कर दिया है, इसका एक उदाहरण लीजिये। एक बार, धार्मिक-जोश से उत्तेजित होकर मौलाना मुहम्मदअली ने कहा था, कि—"मैं, सैकड़ों गान्धियों की अपेक्षा एक अपढ़-मुसलमान को इसलिये अच्छा समझता हूँ, कि वह मुसलमान है"। मौलाना जैसे सभ्य और शिक्षित-व्यक्ति के मुँह से ये शब्द केवल धार्मिक-मतभेदजन्य पक्षपात के कारण ही निकल सके थे। यदि यह रोग न होता, तो वे लाख विरोध होने पर भी गान्धीजी जैसे देशपूज्य-व्यक्ति के विषय में ऐसे शब्द न कह पाते, न वह सभा सुन ही सकती थी।

संसार में, और चाहे जिस देश पर धार्मिक-मतभेद का चाहे जो प्रभाव पड़ा हो, लेकिन हम अपने देश में प्रत्यक्ष देखते हैं, कि इस मतभेद के कारण देश की कमर झुक गई है या देश के अंगोपांग में लकवा मार गया है! जिस मतभेद ने हमारा इस तरह सर्वनाश करके हमें अवनति के गर्त्त में गिरा दिया है, उसे बढ़ाने या सुरक्षित रखने के लिये क्या अब भी हम धर्म-

रूपी ढोंग को सुरक्षित रक्खेंगे ? हाँ, यदि हमारी अवनति अभी और होनी है, तब तो हम इस ढोंग में फँसे ही रहेंगे, लेकिन यदि अब हम इसके दुष्परिणामों से घबरा उठे हैं, तो निश्चय ही विचारपूर्वक इस ढोंग की असलियत का पता लगाकर उसे छोड़ देंगे।

धर्म और हिन्दू-समाज.

हम, पहले बतला आये हैं, कि धर्म स्वयं तो ढोंग है ही, लेकिन इसके साथ ही साथ उसका जिस क्षेत्र से सम्पर्क होगया, उस क्षेत्र में भी ढोंग फैल गया। जिस दिन हिन्दू-समाज के सामाजिक-नियमों में धर्म घुसा, उसी दिन मानों हिन्दू-जाति का कपाल फूट गया। जिस दिन से हमलोग सामाजिक-विषयों का निर्णय धार्मिक-पुस्तकों के आधार पर करने लगे, उसी दिन से मानों हमारी बुद्धि का दिवाला निकल गया! विवाह के लिये धर्म-ग्रन्थ देखो, लड़का होने पर धर्म-ग्रन्थ देखो, रोटी खाने में धर्म-ग्रन्थ देखो, पानी पीने में, सोने में, बैठने में, चलने में, बोलने में, पहनने और ओढ़ने में, लेने-देने और व्यवहार में भी धर्म-ग्रन्थ ही देखो। सारांश यह, कि कोई भी सामाजिक-कार्य, धर्म-ग्रन्थ की सहायता और धार्मिक-नियम-अनुकूल हुए विना कभी हो ही नहीं सकता।

जब, समाज में धर्म घुसा, तो ढोंग का फैलना तो आवश्यक ही था। फलतः, समाज में श्रेणी-विभाजन हुआ। इस विभाजन के अनुसार, कुछ लोग अत्युत्तम बन बैठे और शेष लोग उस श्रेणी के संस्कारी-गुलाम! यह उत्तम-श्रेणी ब्राह्मण कहलाने और शेष लोगों से पूजी जाने लगी। आगे चलकर, इस श्रेणी की तबियत में—अत्यधिक पूजा पाने के कारण—दम्भ पैदा होगया और फिर वह अपने बराबर किसी को मानने ही न लगी। यही नहीं, उनके धार्मिक-क़ानून के

अनुसार, कोई भी कार्य उनकी अनुमति और उनसे व्यवस्था लिये बिना हो ही नहीं सकता था। जब, समाज के लोग ही अन्धे थे, तब भला वे इस अन्धविश्वास से लाभ क्यों न उठाते ? फलत: सारे धार्मिक-जीवन पर और धर्म को घुसेड़कर सामाजिक-जीवन पर भी उन्होंने अपना आधिपत्य जमा लिया। बस, फिर तो ब्राह्मण हिन्दू-जाति का बिना ताज का बादशाह बन बैठा और हज़ारों-वर्ष तक उसने समाजरूपी-भेड़ को अपनी इच्छानुसार दिशा में चलाया। जिसमें उन्हें अपना स्वार्थ दीख पड़ा, वह सब उन दीन-हीन और अज्ञानी-जीवों से ब्राह्मणों ने करवाया। इस बीसवीं-सदी में भी, अधिकांश हिन्दू, ब्राह्मणों को ईश्वर का अंग मानकर पूजते और उन्हें हज़ारों-रुपयों की सम्पत्ति दान करते हैं। यह बात, एक ब्राह्मण कहे जानेवाले कुल में उत्पन्न होकर भी हम नि:संकोच-भाव से कहेंगे, कि धर्म के ढोंग के सामाजिक-जीवन में मिल जाने के कारण जितना अनुचित-लाभ ब्राह्मण-जाति ने उठाया है, और अब भी उठा रही है, उतना और किसी ने नहीं। यदि, धर्म का सामाजिक-जीवन में मिश्रण न कर दिया जाता, तो न तो यह स्थायी श्रेणी-विभाजन ही होता, न इस तरह की लूटपाट ही ! यही श्रेणी-विभाजन, आगे चलकर अधिकाधिक पुष्ट होता गया और चार सवर्ण तथा पाँचवें अवर्ण यानी अछूत-दल की उत्पत्ति होगई। पहले, जबतक कि धर्म का समाज पर प्रभाव नहीं पड़ा था, मनुष्यमात्र एक थे और उनमें परस्पर किसी प्रकार का भेदभाव न था !

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों उच्च-वर्ण के लोगों में पवित्रता की भावना तथा दूसरों को अपने से नीच मानने के विचार बढ़ते ही गये। बौद्धकाल के जन्म से पूर्व भारत में यह

स्थिति थी, कि यदि किसी सवर्ण की दृष्टि किसी अच्छे-कार्य को जाते समय किसी अछूत पर पड़ जाय, तो वह सवर्ण स्नान करता या हाथ-पैर ही धो डालता। अछूतों को, नगर में जाते समय एक आवाजदार-लकड़ी ठोकते हुए चलना पड़ता था, जिसमें कोई सवर्ण-हिन्दू उनसे छू न जाय। बुद्ध ने, इस जुल्म के विरुद्ध आवाज उठाई, तभी से इसकी मात्रा कुछ कम हुई; लेकिन यह 'अछूत' का रोग समाज में अबतक मौजूद है। भंगी कुल में उत्पन्न व्यक्ति, भले ही मैला न उठाता हो, भले ही वह पढ़ा-लिखा विद्वान् हो, लेकिन यदि सवर्ण-हिन्दू यह जान पावे, कि यह भंगीकुलोत्पन्न है, तो वह उसे कदापि न छुएगा। कारण, कि यह सनातन से चला आया हुआ 'धर्म' है। उसको छूना पाप है।

मनुष्यता का इतना भीषण-उपहास, क्या धर्म की सहायता के बिना कभी होसकता था? कदापि नहीं। मनुष्य को मनुष्य से स्पर्श करना चाहिये या नहीं, यह एक साधारण सामाजिक-प्रश्न है, लेकिन हम इसका उत्तर धर्म-शास्त्रों में ढूँढते हैं। और यह निश्चित ही है, कि जब हम धर्म-शास्त्र खोलकर किसी प्रश्न का उत्तर ढूँढेंगे, तो सिवा ढोंग के वह शास्त्र कुछ न बतलावेगा। इसी नियम के अनुसार, आज हज़ारों-वर्षों से हिन्दुओं ने बेचारे अछूतों पर धर्म के नाम पर जुल्म कर रक्खा है और अपने अज्ञान तथा धर्माचार्यों के पुनर्जन्मादि ढोंगपूर्ण-गपोड़ों को सुनकर वे बेचारे इसे सत्य मान लेते हैं, कि हम अछूत हैं और अपने पापों का फल भोगने को अछूत-कुल में पैदा हुए हैं! यदि, धर्म का ढोंग हिन्दू-जाति के सिर से उतर जाय, तो क्या कभी इस तरह एक मनुष्य को हम कुत्ते से भी बदतर मानकर जन्मभर उसे अपमानित कर सकते हैं? कदापि नहीं।

हम, धर्म के कथनानुसार उन बेचारों को अस्पृश्य तो मानते हैं, लेकिन जब कोई अछूत हमारे धार्मिक-नियमों को लात मारकार मि० मार्टिन बन जाता है, तब हम उसे सारे ही नागरिक-अधिकार दे देते हैं। ढोंग का, इससे बढ़िया-प्रमाण और क्या चाहिये? क्या धर्म के झूठे-ढोंग ने हमारी बुद्धि पर पर्दा डालकर हमें अधम नहीं बना डाला है? ख़ैर।

जब धर्म की दुम बढ़ी, तो वह रोटियों में भी जा घुसी। किस प्रकार के व्यक्ति के हाथ का भोजन करना चाहिये और किस तरह सफ़ाई से रहनेवाले को भोजन बनाने का अधिकार है, इस सामाजिक-प्रश्न के लिये भी हमने धर्म की शरण ली। फलतः उच्च कहे जानेवाले लोगों ने अन्य लोगों के हाथ का भोजन खाना ही नहीं छोड़ दिया, बल्कि स्वयं उनके बनाये हुए भोजन को भी यदि कोई छू जाय, तो वह भोजन अग्राह्य माना जाने लगा। और ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, त्यों-त्यों "रोटियों में ही धर्म" माना जाने लगा। आज यह दशा है, कि यदि किसी बड़े-बूढ़े के सामने कोई यह कह दे, कि आपके लड़के ने अमुक-व्यक्ति के हाथ का भोजन कर लिया है, तो वह बूढ़ा चिल्ला पड़ेगा, कि हाय इस लड़के ने तो धर्म ही डुबो दिया। मतलब यह, कि इस बीसवीं-सदी में भी रोटियाँ धर्म का प्राण मानी जाती हैं और लोग चाहे बड़े-से-बड़ा नैतिक-अपराध भले ही कर डालें, डाका, चोरी, ख़ून सब कुछ कर लें, लेकिन किसी अन्यजातीय-व्यक्ति के हाथ का भोजन नहीं कर सकते। कारण, कि धर्म केवल रोटियों में ही निहित बतलाकर लोगों ने उन्हें पागल कर दिया है। वे बेचारे, यह नहीं जानते, कि धर्म किस चीज़ का नाम है, वर्तमानकाल में उसका क्या स्वरूप है और रोटियों के साथ उसका क्या सम्बन्ध है!

उन्हें तो धर्म के नष्ट होजाने का भय है, इसलिये वे किसी और के हाथ की रोटी नहीं खाते, फिर चाहे वह रोटी उनकी अपेक्षा अत्यधिक सफ़ाई से ही क्यों न बनाई गई हो।

संयुक्त-प्रान्त के लोगों की रोटी, छूने से अग्राह्य होजाती है, मालवे के लोगों की रोटी मीलभर पर से चौके में कंकर फेंक देने से अभक्ष्य होजाती है और मद्रास-प्रान्त के वैष्णवों की रोटी, दूरबीन लगाकर चार-मील पर से देख लेने से भी छूत होजाती है। इस रोटी की लीला ही विचित्र है, जिसे समझने में असमर्थता है।

तिस पर मज़ा यह है, कि जो व्यक्ति रोटी के सम्बन्ध में जितना ही अधिक ढोंग करता है, वह उतना ही पवित्र तथा धर्मात्मा समझा जाता है! जो किसी के हाथ का भोजन न करे, वह परम-धर्मात्मा तथा आदरणीय! ऐसी स्थिति में, कौन चाहेगा, कि लोग मेरी इज्ज़त न करें? जब किसी के हाथ का भोजन न करने से ही प्रतिष्ठा बढ़ती है, तो कौन दूसरों के हाथ का भोजन करके बेधर्म, भ्रष्ट, किरिस्तान आदि उपाधियाँ लगवावे? बस, इसी कारण हिन्दू-जाति का यह रोटीवाला-ढोंग और अधिक-दृढ़ होगया तथा जबतक धर्मरूपी ढोंग का नाश नहीं होजाता, तबतक इससे पिण्ड छूटना सरल-बात नहीं है। जिन लोगों की यह इच्छा हो, कि रोटियों में धर्म माना जाना बन्द होजाय, उन्हें सबसे पहले धर्म की ही जड़ खोदनी होगी। बिना धर्म का नाश हुए, यह दुर्गुण दूर नहीं होसकता।

मामला, रोटी ही तक नहीं सीमित है। रोटी के बाद पानी का नम्बर है। जिस तरह किसी अन्य-जातिवाले की छुई हुई रोटी खाने से मनुष्य 'बेधर्म' होजाता है, उसी तरह कुछ जातियों

और कहीं-कहीं तो केवल ब्राह्मणों के अतिरिक्त किसी और के हाथ का पानी पी लेने से 'धर्म' नष्ट होजाता है। यही नहीं, मद्रास-प्रान्त के वैष्णवलोग यदि किसी अवैष्णव के देखते हुए पानी पी लें, तो उस पानी में उनका धर्म ही बह जाय! जो पानी कुएँ तथा नदी में किसी के छूने पर छूत नहीं होता, वही लोटे या घड़े में आ जाने पर छूत होने लगता है। इस प्रकार की मूर्खता को, धर्म के अतिरिक्त और कौन जन्म दे सकता है? लेकिन, धर्मजन्य-अन्धविश्वास के कारण आज समाज की यह दशा हो रही है, कि जो व्यक्ति अधिक-से-अधिक परहेज़ रखकर पानी पीता हो, उसे अधिक-अच्छा समझा जाता है। ऐसी दशा में, कौन न चाहेगा, कि लोग मुझे बड़ा-आदमी समझें? बलिहारी है इस स्थिति की।

केवल खाने-पीने में धर्म मानकर, हिन्दू-जाति ने अपनी संस्कृति को हलाल कर डाला। जब धर्म इसी में माना जाने लगा, तो लोगों ने सदाचार को उतना महत्व नहीं दिया, जितना खाने-पीने के परहेज़ को! इस परहेज़ की भी कोई सीमा न थी। खाने-पीने में ज़रा भी कम परहेज़ होते ही मनुष्य परिवारों से निकाल दिये गये और उन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध, प्रशस्त-संस्कृतियों में मिल जाना पड़ा। एक बार, किसी मुसलमान-सेना को राजपूतों ने खदेड़ा। आगे-आगे मुसलमान भागे जाते थे, पीछे-पीछे राजपूतों की सेना खदेड़ती जाती थी। जब, बहुत-दूर निकल गये और राजपूतों ने खदेड़ना छोड़ दिया, तब मुस्लिम-फ़ौज के मुल्ला ने उन खदेड़नेवालों से बदला लेने की युक्ति सोची। उसने यह मशहूर कर दिया, कि भागते समय हमलोगों ने, रास्ते के सब कुँओं में थूका है। बस, फिर क्या था, शेष राजपूतों ने उस खदेड़नेवाली-सेना से अपना सम्बन्ध

तोड़ दिया और अन्त में विवश होकर उन बेचारों को मुसलमान होजाना पड़ा। इसी तरह, दक्षिण में ईसाइयों ने कुँओं में डवलरोटी के टुकड़े डाल-डालकर, उन कुँओं में पानी पीनेवालों को जातिच्युत करवाया और ईसाई-धर्म में दीक्षित कर लिया। यह धर्म-परिवर्तन, केवल धर्म-परिवर्तन ही न था, बल्कि संस्कृति-परिवर्तन भी था। यह जानते हुए भी धर्माचार्यों ने कोई परवा न की और अपने धर्म की पूँछ, रोटी-पानी के क्षेत्र से बाहर न निकाली। क्या संसार में और भी कोई जाति हमलोगों की तरह मूर्ख होगी? लेकिन नहीं, यह हमारा दोष न था। यह, हमारे उस धर्म का दोष था, जो हमें मूर्खता की इस सीमा तक घसीट लेगया। यद्यपि, आर्यसमाजियों के श्लाघ्य-प्रयत्न के कारण हिन्दुओं में इस प्रकार की शिकायतें बहुत-कम होगई हैं, लेकिन फिर भी जहाँ-जहाँ पोपों या लालबुझक्कड़ों के पट्टशिष्य मौजूद हैं और वे किसी का छुआ अन्न-जल उपयोग कर लेनेवाले को भ्रष्ट मानते हैं, वहाँ-वहाँ इस बीसवीं-सदी में भी ये क़िस्से सुनने को मिलते हैं, कि अमुक की लड़की या स्त्री ने मुसलमान का छुआ पानी पी लिया, इसलिये वह घर से निकाल दी गई।

हम पूछते हैं, कि आख़िर जो लोग इस तरह अपने परिवार के व्यक्ति को घर से निकाल देते हैं, वे क्या समझकर ऐसा करते हैं? क्या उनकी समझ से उस मनुष्य के सींग उग आते हैं? वह पागल होजाता है? लोगों को काटने लगता है? कोढ़ी या किसी छूत के रोग का रोगी होजाता है? क्या उसमें मनुष्यता नहीं रहती? यदि यह बात नहीं है, तो फिर वह कारण क्या है? इसके उत्तर में बतलाया जाता है, कि उसने दूसरों का छुआ पानी पी लिया, इसलिये उसका 'धर्म'

नष्ट होगया। वाह रे धर्म! जिसके कारण परिवार का प्राणों से अधिक प्रिय-व्यक्ति छूट जाय। यह धर्मनाश, स्वयं धर्माचार्यों की उक्ति से भी विरुद्ध है, लेकिन समाज और धर्म के मिश्रण से जो नई-नई बीमारियाँ पैदा होगई, उनके सर्वथा अनुकूल।

लालबुझक्कड़ों के दलाल, अब भी यह कहते समय फूले नहीं समाते, कि हिन्दू-जाति सदैव धर्मप्राण रही है और अब भी धार्मिक-मामलों में वह सब संसार से आगे है। हम भी तो यही कहते हैं, कि सचमुच ही सारे संसार में धर्म के पीछे जिस तरह हम पागल होगये हैं, जिस तरह आँखें बन्द करके उसे अविचारपूर्ण-हौआ बना बैठे हैं, उस तरह न तो कोई पागल ही हुआ, न किसी के यहाँ रोटियों में ही धर्म घुसा। धर्म ने, हमें मिट्टी में मिला दिया, हमारा सर्वनाश कर डाला। जो लोग, हिन्दू-जाति के धार्मिक-जीवन की प्रशंसा करते हैं, उन्होंने हिन्दू-जाति के, धर्म के द्वारा होनेवाले सर्वनाश का अध्ययन ही नहीं किया, यह निश्चित है। धर्म ने, हिन्दू-संस्कृति को पुष्ट नहीं किया, बल्कि उसे बच्चों का-सा घरौंदा बना दिया, जो दिनभर परिश्रम करने के बाद तयार होता और क्षणभर में ही नष्ट कर दिया जाता है। धर्म के नाम पर हम किसी को अपनी संस्कृति के क्षेत्र से खदेड़ दें, इससे बढ़कर धर्मोन्माद और क्या होगा? अस्तु।

हिन्दू-जाति में, धर्म का उन्माद समाज-भेद ही तक नहीं सीमित रहा। बल्कि, उसने हिन्दू-गार्हस्थ्य-जीवन में भी अपना दखल जमा लिया। जब, पुरुष ही धर्म-शास्त्र के रचयिता और नियामक थे, तब वे भला स्त्री-जाति को अपने अधीन रखने का प्रयत्न क्यों न करते? फलतः 'धर्म-शास्त्र' के अनुसार

स्त्रियों के सारे अधिकार छीनकर उन्हें पुरुषों की मुस्तक़िल-गुलाम बना दिया और पुरुषों को उन पर स्वेच्छाचार करने के सारे अधिकार दे दिये गये। धर्म-शास्त्र कहता है, कि स्त्री सदैव पुरुष के अधीन है, वह कभी स्वतन्त्र नहीं होसकती। धर्म-शास्त्र कहता है, कि स्त्री को पति की भक्ति करनी चाहिये, फिर भले ही पति दुराचारी क्यों न हो। धर्म-शास्त्र ही कहता है, कि पुरुषों को अधिकार है, कि वे सोलहहज़ार एकसौ-आठ विवाह करें, लेकिन स्त्री का पुनर्विवाह नहीं होसकता। धर्म-शास्त्र ही बतलाते हैं, कि स्त्रियों को विद्या पढ़ने या वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। कहाँ तक कहें, धर्म-शास्त्र वे सभी बातें स्त्रियों के लिये आवश्यक बतलाते हैं, जिनके द्वारा वे पुरुष-जाति की गुलाम और उनकी सर्वथा आश्रित हो पड़ें।

इस धार्मिक-अत्याचार के कारण, स्त्री-जाति की वह दुर्दशा हुई है, जिसे देखकर रोएँ खड़े होजाते हैं। इतिहास बतलाता है, कि जितना भयङ्कर-अत्याचार हिन्दू-धर्म ने स्त्री-जाति पर करवाया है, उतना किसी असभ्य-से-असभ्य मजहब ने भी नहीं करवाया।

आज भी हिन्दू-जाति, अपने धार्मिक-नियमों और विश्वासों के कारण यह मानती है, कि कन्या तथा गौ को चाहे जिसे दे दिया जावे, उसे कुछ भी बोलने का अधिकार नहीं है! गौ और कन्या की यह तुलना, हमारे मातृपक्ष के प्रति होनेवाले आदर के दिवाले का ढिंढोरा है। बेचारी कन्या सचमुच ही इस तरह विवश है, कि वह अपने विवाह के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बोल सकती। यही कारण है, कि हज़ारों-कन्याएँ उनके दादा की उम्रवाले बूढ़ों के गले मढ़ दी जाती हैं। लड़कियाँ इस बात को जानती हैं, कि उनका जीवन बूढ़े के

साथ विवाह करके नष्ट किया जारहा है, लेकिन धार्मिक-नियमों की कठोरता के कारण, वे इस पशुता के विरुद्ध एक-शब्द भी नहीं बोल सकतीं। उन्हें जहाँ भेजा जारहा है, बिना नाक-भौं सिकोड़े उन्हें वहाँ जाना ही चाहिये, इसी में परिवार की प्रतिष्ठा तथा सनातन से चले आये हुए 'धर्म' की रक्षा है !

धर्म और समाज के मिश्रण से, हमारे सर्वनाश के जो-जो उपाय हुए, उनमें छोटी-छोटी कन्याओं के विवाह कर देने की रीति भी एक है। ढोंगी-धर्माचार्यों ने, "अष्टवर्षा भवेद्गौरी" का सिद्धान्त बतलाकर, छोटी-से-छोटी कन्या के विवाह में, अधिक-से-अधिक धर्म होना बतला दिया। इस पाशविक-प्रथा का, हिन्दू-जाति के जीवन पर जो बुरा-प्रभाव पड़ा, उसे सभी सभ्य-मनुष्य जानते हैं। अस्तु।

धर्म के, सामाजिक-जीवन में मिश्रित होजाने के कारण जो स्थायी-श्रेणीविभाजन होगया है और उन श्रेणियों में भी जो कुलों के ऊँच-नीच का पचड़ा घुस बैठा है, उससे कन्याओं के जीवन और भी अधिक दुःखमय होगये हैं। अब तो बहुत-सी जगहों पर यह दशा है, कि यदि घर में काफ़ी धन है, तब तो लड़की का विवाह आसानी से और 'धार्मिक-मर्यादा' की रक्षा करते हुए होसकता है, अन्यथा नहीं। कन्या, मानों धन के लिये काल है। इसी कष्ट से विवश होकर, कई जगह और कई जातियों में सद्यःजात-कन्याओं का गला घोटकर मार डालने और 'मरी हुई पैदा हुई' या 'होते ही मर गई' मशहूर कर देने की रीति प्रचलित हुई, जो कहीं-कहीं अब भी मौजूद है !

ऊँच-नीच और कुल-अकुल का जो मूर्खतापूर्ण-ढोंग हिन्दू-

जाति में घुस बैठा है, उसने कन्याओं को समाज के कई भागों में बोझरूप बना दिया है। नियमानुसार, हमें अपने से उच्च-कुल में कन्या का विवाह करना चाहिये, इसलिये ऊँचे-कुल के लड़कों की माँग बहुत बढ़ गई और लड़के कम थे। अर्थ-शास्त्र का यह नियम है, कि जब माँग अधिक होती है और पूर्ति कम, तब वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है। ठीक इसी नियम से कुलीन-लड़कों के दाम बढ़े और लेखक की जाति—कान्यकुब्जों—में अच्छे-परिवार के शिक्षित-लड़कों का मूल्य दस-दसहज़ार तक होगया है। इस तरह, कन्याएँ आफ़त हो पड़ी हैं और अधिकांश हिन्दुओं के यहाँ वे घृणा की दृष्टि से देखी जाती हैं। वाह रे धर्म की लीला!

यहाँ, कोई हमसे यह पूछ सकता है, कि जब कान्यकुब्जों में यह दशा है और क़रीब-क़रीब यही दशा अधिकांश हिन्दुओं में है, तो इस दहेज की कुप्रथा को बन्द करवाकर कन्याओं का जीवन सुखी क्यों नहीं बनाया जाता? लोग, इसके लिये ज़बर्दस्त-आन्दोलन क्यों नहीं करते? इसके उत्तर में हम कहेंगे, कि जो लोग हिन्दू-समाज के सुधार की—इस धर्मरूपी ढोंग का अस्तित्व भारत में रहते हुए—आशा करते हैं, वे बालू से तेल निकालने का प्रयत्न करते हैं। जबतक 'धर्म' है, तबतक समाज-सुधार कैसा? धार्मिक-नियमों की रोक उसे कब सफल होने दे सकती है?

एक कुलवाला मानता है, कि अमुक कुलवाला मुझसे श्रेष्ठ है, उसके यहाँ कन्या का विवाह करने से मेरे धर्म और प्रतिष्ठा की रक्षा होगी। उच्च समझा जानेवाला जब देखता है, कि बहुत-से घोंघे मेरे यहाँ सम्बन्ध करना चाहते हैं, तब वह 'बढ़े सो पावे' की नीति अख्तियार कर लेता है। बस यहीं

दहेज की कुप्रथा की नींव पड़ती है। जो लोग दहेज लेनेवालों को कोसकर दहेज की कुप्रथा बन्द करवा देने की आशा करते हैं, वे पागल हैं। यह आर्थिक-युग है, लोग एक-एक पैसे के लिये बेईमानी करने पर उतारू हैं। ऐसी दशा में, 'एक-पंथ दो-काज' वाली कहावत चरितार्थ करने के बदले 'कुलीनलोग' दहेज की प्रथा को क्यों छोड़ दें ? जबतक संसार में उन्हें बड़ा मानकर धन देनेवाले मूर्ख मौजूद हैं, तबतक वे प्रतिष्ठा के साथ-साथ हजारों की सम्पत्ति क्यों न वसूल करें ? वे न तो कर्ण हैं, न हरिश्चन्द्र ! समाज की रक्षा के लिये वे एक पैसा न छोड़ेंगे, चाहे जाति या समाज जहन्नम को जाय !

तो फिर इसका उपाय क्या हो ? इसका केवल एक ही उपाय है, कि इन सारे ढोंगों की जड़ धर्म को नष्ट कर दिया जावे। जब धर्म नष्ट होजावेगा, समाज में उसका प्रभाव न रहेगा, तब ऊँच-नीच का भेद-भाव अपने-आप नष्ट होजावेगा। उसी समय इस दहेज की प्रथा का नाश सम्भव है। इससे पहले दहेज की प्रथा को कोसना, अपने अज्ञान को गा-गाकर सुनाना है ! अरे पागलो ! क्यों दूसरों को ऊँचा मानो और क्यों इसके पीछे अपनी तथा कन्याओं की जिन्दगी वर्बाद करो ? यह नहीं होसकता, कि बड़े कहे जानेवाले कुलों में विवाह भी किया चाहो और धन भी न दिया चाहो। वहाँ तो स्पष्ट ही दूकानदारीवाला हिसाब है, जो अधिक दाम दे, वही सौदा खरीदे। इस विषय में सुधार नहीं होसकता, इसका उपाय है—सर्वनाश !

झूठे श्रेणी-विभाजन और कुलमर्यादा ने कहीं-कहीं कन्याओं को वे कष्ट दिये हैं, जिनकी कोई सभ्य-मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता। बहुत-सी कन्याओं के विषय में सुना जाता है, कि केवल कुलमर्यादा की रक्षा के लिये, धन का अभाव होने

के कारण, परिवार उनका विवाह करने में असमर्थ रहा और इस तरह वे वृद्धावस्था तक कुआँरी रहकर मर गईं। पैंतीस-पैंतीस और चालीस-चालीस वर्ष की कुमारियाँ इस बीसवीं-सदी में भी ऐसे कुलों में मिल सकती हैं, जिनमें मर्यादा या दहेज का रिवाज है! चार-छः ऐसी कुमारियाँ बतलाने का ज़िम्मा लेखक पर रहा।

यही नहीं, एकाध स्थान पर तो यह रिवाज भी है, कि जब किसी कन्या का विवाह नहीं हो पाता, तब उसके माता-पिता किसी कुलीन के मरने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। जब किसी कुलीन के मरने का संवाद पाते हैं, तो कन्या को लेकर वहाँ जाते और मृतक की लाश के चारों-तरफ़ कन्या को सात-बार घुमाकर उसे उस व्यक्ति की विवाहिता मान लेते, एवं चूड़ियाँ तुड़वाकर यानी अपनी लड़की को विधवा बनाकर वापस अपने घर लौट आते हैं!

इसी प्रकार का एक और नीच-कृत्य संयुक्त-प्रान्त के कुछ ब्राह्मणों में पूर्व-काल में प्रचलित था। वह यह, कि जब किसी कुमारी का सारा जीवन यों ही बीतता जान पड़ता, तब वह किसी पीपल के वृक्ष के साथ विवाह दी जाती और उस पीपल की सेवा में अपना सारा-जीवन व्यतीत कर देने का उपदेश पाजाती! इसका तात्पर्य यह था, कि वह पीपल ही उसका पति है, उसके लिये संसार में कोई पुरुष ब्रह्मा ने रचा ही न था! कैसी वर्वरता है!

हिन्दू-जाति, जितनी ही अधिक धर्मात्मा कही जाती है, धर्म के कारण वह उतनी ही रसातल में जा पड़ी है। स्त्री-जाति का जैसा अपमान जीवित-अवस्था में इनके यहाँ धर्म ने करवाया है, वैसा ही अपमान कहीं-कहीं मरने पर भी किया जाता

है। लेखक को, मालवा-प्रान्त में एक अत्यन्त-भयङ्कर अनुभव हुआ, जिसे मिस मेयो ने अपनी पुस्तक में बढ़ा-चढ़ाकर लिखा है। वह यह, कि जो स्त्री सौरि (प्रसूतिकाल) में मरती है, उसके चुड़ैल होकर घरवालों को परेशान करने का अन्देशा रहता है! इस भय की रोक के लिये, कोई-कोई अपने घर की मृत-बहू के हाथों-पैरों में बहुत-सी आलपिनें चुभो देते हैं, ताकि न वह उनके दर्द के मारे चलने पावे, न घर आकर घर के लोगों को दिक करे! मिस मेयो ने लिखा है, कि मरणकाल में बड़े-बड़े कीले हाथों में गाड़ दिये जाते हैं, लेकिन वह ठीक नहीं है, लाश के हाथों-पैरों में पिनें घुसेड़ी जाती हैं! यदि, धार्मिक-व्यवस्था के कारण स्त्रियाँ अधम और अपमान-योग्य न मानी जातीं, यदि धर्म के ढोंग से प्रभावित होकर लोग भूत-प्रेत के फेर में न पड़ जाते, तो क्या बेचारी स्त्रियों के मरने के बाद उनकी लाश का इस बुरी-तरह अपमान किया जाता? अब भी कौन पागल कहता है, कि धर्म ने हिन्दू-समाज को उन्नत बनाया है?

हम, पहले कह आये हैं, कि जब से और-और कार्यों के साथ विवाह भी धार्मिक-कार्य माना जाने लगा, तभी से हमारा सर्वनाश और हमारी अधमता का विकास होने लगा। धर्म-शास्त्र कहें, वह विवाह ठीक है, दूसरा नहीं। और धर्म-शास्त्र के रचयिता थे पुरुष, इसलिये उन्होंने खूब दिल खोलकर अपने लिये आराम का इन्तिज़ाम बाँध लिया है। पहले बतलाया गया है, कि एक पुरुष सोलहहज़ार एकसौआठ विवाह कर सकता है, लेकिन एक स्त्री का, जो चार या दो-साल की उम्र में ही विधवा होगई हो, फिर से विवाह नहीं होसकता। यह फिलॉसफ़ी समझने में हम आजतक असमर्थ रहे हैं, कि आख़िर यह ज़ुल्म क्यों? यदि स्त्री का पुनर्विवाह

निषिद्ध है, तो पुरुषों का क्यों नहीं? यदि पुरुषों का पुनर्विवाह होसकता है, तो स्त्रियों को इसकी इजाज़त क्यों न दी गई? इसका उत्तर ढूँढने पर पता चलता है, कि यह प्रत्यक्ष ही जुल्म है! धर्म के, समाज में मिश्रित होजाने के कारण, स्त्री-जाति की जो अवनति होगई है, उसी के परिणाम-स्वरूप यह भयङ्कर-स्थिति पैदा हुई है। बारीक-निगाह से देखने पर पता चलता है, कि इसी पशुता के कारण हिन्दू-जाति और हिन्दू-संस्कृति मिट्टी में मिल गई और मिल रही है।

आर्यसमाज के सराहनीय-प्रयत्न के कारण, जहाँ-तहाँ विधवा-विवाह होने लगे हैं, किन्तु वे नगण्य हैं! और समाज-सुधार के लिये दो-चार विधवा-विवाह करवा देना या यत्र-तत्र विधवाश्रमों की स्थापना करवा देना पर्याप्त भी नहीं है। बहुत-से आर्यसमाजियों के लिये देखा गया है, कि वे दूसरों को विधवा-विवाह का उपदेश तो देते हैं, लेकिन अपने घर की विधवा-लड़की या बहू को विवाह नहीं करने देते। कारण, कि वैधव्य का कष्ट उन्हें तो उठाना नहीं पड़ता, जिसे पड़ता है, उसके लिये वे क्यों अपनी जाति से च्युत हों तथा अपने घर से एक रोटी पर काम करनेवाले मजदूर को बाहर क्यों निकालें?

ऊपर, स्त्री-जाति के अपमान सम्बन्धी जितनी बातें लिखी जा चुकी हैं, उन सबकी दवा क्या है? यह प्रश्न यदि कोई हमसे पूछे, तो हम यही कहेंगे, कि प्लेटफार्म से लम्बे-लम्बे भाषण देना, भारी-भारी प्रस्ताव पास करना, बाल-विवाह-क़ानून बनवाना, विधवाश्रमों या सभाओं की स्थापना करना, इस रोग की दवा कदापि नहीं हैं! इस रोग की केवल एक ही दवा है और वह यह, कि स्त्री-जाति में, आमूलपरिवर्तनकारी-क्रान्ति की

भावनाएँ उत्पन्न होजायँ। जबतक, स्त्रियाँ स्वयं ही जागकर पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करने के लिये मैदान में न उतर आवेंगी, तबतक पुरुष-जाति उन्हें अपनी गुलाम बना रखने में ही कल्याण मानेगी और होगा भी यही। भला कौन ऐसा भोला होगा, जो सीधी-तरह अपना स्वार्थ छोड़ दे ?

स्त्री-जाति को भी, स्वतन्त्र रहने का उतना ही अधिकार है, जितना पुरुषों को। विवाह का तात्पर्य मैत्रीपूर्ण-समझौता है, गुलामी का पट्टा नहीं। जबतक मैत्री में ख़लल न पड़े, तबतक यह सम्बन्ध क़ायम रहना चाहिये, उसके बाद कदापि नहीं। सारांश यह, कि पति-पत्नी सम्बन्ध में तभी एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करना सीखेंगे, जब कोई एक-दूसरे को अपना गुलाम न मानता हो। पत्नियों की ही भाँति, जब पतियों को भी बुरे-आचरण से छोड़ दिये जाने का भय होगा, तभी वे स्त्री-जाति का महत्व जानेंगे और तभी दाम्पत्य-जीवन मैत्री का रूप ग्रहण करेगा। कारण, कि मैत्री दो समान-व्यक्तियों में होती है, मालिक और गुलाम की क्या दोस्ती ? वह तो मालिक के हुक्म के औचित्यानौचित्य पर विचार किये बिना उसका पालन करनेवाली एक मशीनमात्र है !

कुमारियाँ भी, जबतक स्वतन्त्र होकर अपने लिये स्वयं ही वर न पसन्द करने लगेंगी, तबतक उनका जीवन कभी नहीं सुधर सकता। जबतक वे पराश्रित हैं, अपने जीवन को कहीं भी झोंक देने का अधिकार माता-पिता या अभिभावकों को दिये हैं, तबतक वे बूढ़ों से ब्याही जावेंगी, बच्चों से ब्याही जावेंगी, बेंची जावेंगी, पीपल से ब्याही जावेंगी, मुर्दे से ब्याही जावेंगी और ज़रूरत पड़ने पर जीवन भर कुमारी भी रक्खी जावेंगी। सारांश यह, कि बिना स्वावलम्बन ग्रहण किये और संकोच-

-रूपी गुलामी का जुआ कन्धे पर से उतारकर फेंक दिये, उनका और किसी तरह और कभी कल्याण नहीं होसकता।

ठीक इसी तरह विधवाओं के विषय में भी है। जबतक, वे संकोच की गुलामी का जुआ फेंककर सर्वथा-स्वतन्त्र न बन बैठेंगी, तबतक उनका भी कल्याण नहीं होसकता। वर्तमान हिन्दू-समाज में, विधवा एक लावारिस-सम्पत्ति समझी जाती है और कहीं-कहीं तो उसका चुपके-चुपके उपयोग करके फिर उसे 'तीर्थ-यात्रा' को भी ले जाया जाता है! यह तथा ऐसे ही अन्यान्य-जुल्म, उस समय तक कदापि नहीं बन्द होसकते, जबतक विधवाएँ अपने जीवन को सुधारने की इच्छा से, सर्व-नाश की भी परवा छोड़कर, मैदान में न उतर आवें! विधवाओं के कष्ट, लीडरों के भाषणों या लेखों से नहीं दूर होसकते, उनका उपाय केवल विधवाओं की जागृति और उनके अपने पशु से अधिक अपमानपूर्ण-जीवन से, सर्वस्व गँवाकर भी छुटकारा पाने की उत्कट-इच्छा पर निर्भर है! जबतक विधवाएँ नहीं जागतीं, तबतक उनकी भलाई कैसे हो?

सारांश यह, कि हिन्दू-समाजरूपी वृक्ष की जड़ में धर्मरूपी दीमक इस बुरी-तरह लग गई है, कि यदि शीघ्र ही इसको बचाने का कोई उपाय नहीं किया गया, यानी उस दीमक का नाश नहीं कर दिया गया, तो यह वृक्ष नष्ट होजावेगा। जिस जाति के पिछले-इतिहास में उन्नति के गीत गाये जाते हैं, वह धर्म के फेर में फँसकर सचमुच ही संसार की अधोगत-जातियों में गिनी जाने लगी। यदि, हिन्दू-समाज पर धर्मरूपी ढोंग का प्रभाव न पड़ा होता, तो वह आज संसार की सभी उन्नतिशील-जातियों से आगे दीख पड़ता।

अब समय बदल चुका है। संसार के सभी समाज अपनी

उन्नति के प्रयत्न में लगे हैं। क्या इस बीसवीं-सदी के वैज्ञानिक-युग में भी हम हिन्दू-समाज से यह आशा न करें, कि वह धर्म का झूठा-ढोंग छोड़कर अपनी उन्नति और देश की उन्नति करेगा? ध्यान रहे, कि भारत की उन्नति, हिन्दू-जाति के ढोंग-मुक्त होजाने पर ही सम्भव है, पहले कदापि नहीं।

"यह सब वेहूदगी शीघ्र ही मिट जायगी। हरम, घूँघट, परदेवाली-खिड़कियों और पीछे की ओर लेजानेवाले सब विचारों का समय बीत गया। इसलिये, अब उनका भी अन्त करना होगा। आधी-जनता को अन्धकार तथा ग़ुलामी में रखते हुए, प्रजातन्त्र-शासन कैसे क़ायम किया जा सकता है? दो-वर्ष में, प्रत्येक-स्त्री को अपने मुँह पर से घूँघट हटा लेना होगा और पुरुषों की बराबरी में खड़ी होकर सब कार्य करने पड़ेंगे। पुरुषों को हैट पहनने होंगे। वह समय व्यतीत हो चुका, जब कपड़ों को धर्म का चिन्ह माना जाता था। 'फ़ैज़' जो मज़हब का चिन्ह है, उसे अवश्य ही छोड़ना पड़ेगा और उसके साथ जो अन्धविश्वास है, उसको भी मिटा देना पड़ेगा।"

—ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमालपाशा.

धर्म और राष्ट्रीयता.

सन् १९३१ ई० का जिक्र है। लेखक, प्रान्तीय-कांग्रेस-कमेटी अजमेर के दफ़्तर में कार्य करता था। जिस दिन सीमाप्रान्त के नेता सरदार श्री अब्दुलग़फ़्फ़ारख़ाँ गिरफ़्तार हुए, उस दिन सारे शहर में हड़ताल मनाना निश्चित हुआ और वालण्टियरलोग इस कार्य को सम्पन्न करवाने, नगर के विभिन्न-भागों में गये। कांग्रेस-कमेटी के दफ़्तर के समीप ही, मदारगेट नामक प्रसिद्ध-बाज़ार है। वहाँ, चन्द मुसलमानों की दूकानों के अतिरिक्त, शेष सब दूकानें बन्द हो चुकी थीं। एक बड़े मुसलमान-व्यापारी से स्वयंसेवक आग्रह कर रहे थे और वह दूकान बन्द करने से इनकार करता था। योगायोग से लेखक भी उधर जा निकला और व्यक्तिगत-परिचय का उपयोग करने के इरादे से उसने भी उस व्यापारी को समझाने का प्रयत्न किया। व्यापारी ने, हड़ताल की आवश्यकता और ख़ानमहोदय की गिरफ़्तारी पर खेद तो प्रकट किया, लेकिन साथ ही यह भी कहा, कि—"आप, मेहरबानी करके दर्गाह (ख़्वाजापीर की प्रसिद्ध-दर्गाह) से इसका हुक्म निकलवा दीजिये, तो हमें दूकान बन्द करने में कोई आपत्ति न होगी। दर्गाह के हुक्म के बिना हड़ताल मनाने पर हमारी जातिवाले हमें 'काफ़िर' कहेंगे।"

हमने, विशेष-आग्रह करना छोड़ दिया, लेकिन अपने मन में इसका कारण ढूँढने पर पता लगा, कि इसमें इस

बेचारे का कुछ भी दोष नहीं है। वह तो देश के दर्द को जानता है, लेकिन उसके सिर पर धर्म का भूत सवार है, जो उसे देश के प्रति सहानुभूति भी नहीं प्रकट करने देता। देश के कार्य में, दर्गाह या धर्म का तो कोई सम्बन्ध ही न था, लेकिन भारत में धर्म के आधिक्य के कारण, राष्ट्रीयता भी धर्म से नहीं बच सकी। अन्य देशों में, राजनीतिक-दलों का संगठन, आर्थिक आधार पर होता है, लेकिन भारत में अब भी अधिकांश दलों का आधार धर्म है और लोग धर्म की रक्षा का आश्वासन देकर ही उन दलों में प्रधानता पाते हैं।

धर्म और राष्ट्रीयता, दोनों विरोधी-वस्तुएँ हैं। कारण, कि राष्ट्रीयता का आधार बुद्धि है और धर्म का अन्धविश्वास ! फिर भला ये दोनों-वस्तुएँ एक साथ कैसे रह सकती हैं ? जहाँ, धर्म का प्रभाव राष्ट्रीयता पर पड़ेगा, वहाँ निश्चय ही राष्ट्रीयता के नाम पर देश-द्रोह की सृष्टि होगी।

भारत में, ठीक यही दशा है। यहाँ के निवासियों को, धर्म ने इस बुरी-तरह टुकड़े-टुकड़े कर दिया है और वे अपनी ही टुकड़ी में इस तरह आसक्त हैं, कि धर्म के कारण दूसरों को अपना विरोधी मानकर, वे राष्ट्रीयता के क्षेत्र में भी उसका ध्यान रखते हैं ! ऊपर हम बतला चुके हैं, कि राष्ट्रीय-कार्यों के लिये भी लोग धर्माचार्यों का मुँह ताकते हैं ! और धर्माचार्य—जिनका व्यवसाय ही लोगों की आँखों में धूल झोंकना है—कब राष्ट्रीयता का समर्थन करने लगे ? फल यह होता है, कि अधिकांश धार्मिक-जीवन व्यतीत करनेवाले लोग, राष्ट्रीयता के विरोधी या उस तरफ़ से बिलकुल मौन हैं !

धर्म के नाम पर होनेवाला संगठन, सदैव देश और राष्ट्री-

यता के लिये घातक सिद्ध हुआ है। और जबतक भारत में इस तरह की दलबन्दी का अस्तित्व है, तबतक सच्ची-राष्ट्रीयता का उदय नहीं होसकता !

मुसलमान, अपनी तरफ़ से चौदह-शर्तें पेश करते हैं, पृथक्-चुनाव चाहते हैं, सीटें सुरक्षित करवाना चाहते हैं, सिंध को बम्बई से अलग करवाना चाहते हैं और ऐसी-ऐसी पचासों-बातें बतलाते हैं, जिनसे उनकी हिन्दुओं के बहुमत से रक्षा हो !

हिन्दू-सभावाले इन सबका विरोध करते हैं, सिलेक्ट-कमेटी के सामने गवाही देते हुए स्वामी-श्रद्धानन्द के मारे जाने और कानपुर, शोलापुर तथा बम्बई के दंगों का वर्णन करते हैं, जिसके लिये लार्ड रीडिंग तथा लार्ड इरविन को बीच में दख़ल देकर यह बात कहनी पड़ती है, कि पुरानी-बातों का पचड़ा गाने से क्या लाभ है ? हिन्दुओं की दृष्टि में, ऐसी-ऐसी बातों की आवश्यकता है, जिनसे उनकी मुसलमानों से रक्षा होसके !

इसी तरह अछूतों का क़िस्सा है। वे, गोलमेज के खुले-सेशन में हिन्दुओं का तीव्र-विरोध करते और ऐसी माँगें पेश करते हैं, जिनसे उनकी हिन्दुओं से रक्षा होसके ! ईसाई और वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघवाले भी रक्षा की दुहाई देते हैं !

और ये सब मिलकर रक्षा चाहते किसके भय से हैं ? अपने ही देशवासियों के भय से उनकी यह दशा है ! धर्म के नाम पर राष्ट्रीयता का कितना जबर्दस्त-संहार है ! यदि, ये सब दल धर्म को आधार मानकर न बने होते, तो क्या कभी एक दूसरे से इतने भयभीत होसकते थे ? कदापि नहीं।

अन्य देशों में, आर्थिक आधार पर दलों का संगठन है। इसी कारण, पूरे-देश की एक ही माँग है। लेकिन, हमलोग धार्मिक-आधार पर संगठित हैं, इसलिये यह कहने में किंचित्

भी अत्युक्ति न होगी, कि हमारे संगठन के मूल में ही भूल है ! और जबतक भारत में आर्थिकआधार पर संगठन नहीं होता, तबतक यही दशा रहेगी।

गोलमेज़-कान्फ्रेन्स के अवसर पर, देश की संयुक्त-माँग पेश करने के बदले, विभिन्न-दलों ने अपनी-अपनी डफली पर अपना-अपना राग गाया है। उस समय, भारतवर्ष की जो छीछा-लेदर इन गोलमेज़ी-शूरों में से अनेकों ने की है, उसे सुनकर लज्जा से सिर नीचे झुक जाता है। उचित तो यह था, कि सब-लोग अपने-अपने धर्म को ताक पर रखकर वहाँ जाते। लेकिन यदि वे ऐसा करते, तो जिन लोगों की ओर से वे वहाँ गये थे, उन्हें क्या जवाब देते ? इसीलिये बेचारे पढ़े-लिखे गोलमेज़ियों को भी धर्म के कीचड़ में फँसकर अपने देश की मिट्टी पलीद कर डालनी पड़ी। खेद।

मज़दूर, किसान, मिल-मालिक, पूँजीपति आदि के पृथक-पृथक् संगठन चाहिएँ और उन्हीं में धर्म का भेदभाव छोड़कर सबको अपने पक्ष की पुष्टि करनी चाहिए। लेकिन हमारे भारत में ऐसा नहीं होता। कांग्रेस, किसानों की भलाई के लिये आन्दोलन करती है। इस बात का विचार छोड़कर, कि यह हम किसानों की भलाई के लिये ही होरहा है, एक मुसलमान-किसान उस आन्दोलन का सिर्फ़ इसलिये विरोध करेगा, कि उसकी खिलाफ़त-कमेटी इस आन्दोलन के विरुद्ध है। सारांश यह, कि उसे अपने आर्थिक-संगठन की उतनी चिन्ता नहीं है, जितनी धार्मिक-संगठन की ! पिछले दो कांग्रेस-आन्दोलनों का विरोध अधिकांश-मुसलमानों ने सिर्फ इसीलिये किया, कि उनका समर्थन खिलाफ़त ने नहीं किया था ! उन्होंने, उन्हें इसलिये बुरा नहीं माना, कि वे देश का

कोई फ़ायदा नहीं पहुँचा सकते। इसलिये भी बुरा नहीं समझा, कि वे हमारे आर्थिक-जीवन को क्षति पहुँचानेवाले हैं। बल्कि, केवल धर्माचार्यों का रुख़ देखकर उनका विरोध किया!

यही नहीं, भारतवर्ष के कई धर्मों ने, राष्ट्रीयता का विरोध तक किया है। सुप्रसिद्ध राधास्वामीमत का नाम हम ज़ोर के साथ इसके लिये लेते हैं और प्रमाण दे सकते हैं, कि उनके आचार्यों ने, पारलौकिक-वृत्ति की प्रशंसा करते हुए, देशोन्नति की भावना को विषयेच्छा के नाम से पुकारा है! कई महन्तों की भी यही दशा देखी गई है और बड़ी-बड़ी चोटीवालों की तो कोई संख्या ही नहीं है! अधिक-धर्मात्मा कहलानेवाले लोगों में से, तीनचौथाई-मनुष्य राष्ट्रीयता के शत्रु हैं। कारण, कि धर्म से कभी अच्छाई तो पैदा हो ही नहीं सकती!

धर्म की ही कृपा का यह फल है, कि मौलाना मुहम्मद-अली के सदृश विद्वान्, महात्मा-गान्धी जैसे महापुरुष को एक तुच्छ-मुसलमान से भी हेय कह सकते हैं! जब, वे गान्धीजी को एक साधारण-मुसलमान से हेय कहेंगे, तो कोई कारण नहीं, कि डाक्टर मुंजे एक पतित-हिन्दू से मौलाना को हेय न कहें! जब, दोनों ओर से धार्मिक-दृष्टिकोण से देखना जारी है, तब दोनों जातियों में राष्ट्रीय-ऐक्य कैसे उत्पन्न होसकता है? जिस दिन भारत से यह अधम-धर्म विदा होजायेगा, उसी दिन एक-दूसरे को हेय समझना और कहना बिलकुल छोड़ देंगे!

जबतक धर्म को भारत से बिदा नहीं कर दिया जाता, तबतक भारत में वास्तविक-ऐक्य तो कभी हो ही नहीं सकता। कारण, कि मालवीयजी और डाक्टर अंसारी समझौते की चाहे जितनी बढ़िया-स्कीमें बनावें, डाक्टर मुंजे और मि० ग़ज़नवी चाहे जो साम्प्रदायिक-समझौता कर लें, किन्तु जन-

साधारण के समीप इन सब-चीज़ों की कोई क़ीमत नहीं है।
उन्हें तो जब भी कोई भड़का देगा और उनका धार्मिक-जोश
उबल पड़ेगा, तभी हिन्दू-मुस्लिम-दंगे तयार हैं। और जहाँ दंगों
की-सी पशुता होसकती है, वहाँ ऐक्य कहाँ? झगड़ों की
रोक का उपाय लीडरों का कोई समझौता नहीं, बल्कि जन-
साधारण को यह बतला देना है, कि जिस धर्म को आधार
बनाकर तुम लड़ने जारहे हो, वह केवल भ्रम ही है! जब,
लोगों को यह मालूम होजावेगा, कि धर्म के झूठे-ढोंग में फँस-
कर हम अपने भाइयों के शत्रु बन बैठे हैं, तभी वे धर्म नामक
गुलामी का जुआ फेंककर बन्धुत्व यानी सच्ची-राष्ट्रीयता के भक्त
बन जावेंगे। इससे पूर्व कदापि नहीं!

भारत में, सचमुच ही सब-कुछ धर्ममय है। विदेशों में,
जिन रंगमंचों—नाटक और सिनेमाओं—से मनोरंजन के साथ-
ही-साथ देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की शिक्षा दी जाती है, भारत-
वर्ष में उन्हीं रंगमंचों से धर्म यानी अन्धविश्वास की शिक्षा
दी जाती है। जिस जगह देखो, पौराणिक-कथाओं के आधार
पर बने हुए नाटक खेले जाते हैं। इस तरह, हमने एक
ज़बर्दस्त-साधन, राष्ट्रीयता के पक्ष में रखने के बदले, उसके
विरुद्ध खड़ा कर दिया है! अपने पतन का इससे उत्तम-उपाय
हम और क्या कर सकते थे? ख़ैर।

सारांश यह, कि धर्म ने हमारी राष्ट्रीयता को मिट्टी में
मिला दिया है। धर्म की ही कृपा से हम गुलाम हुए हैं और
जबतक हमारी खोपड़ी पर धर्म का भूत सवार है, तबतक
न तो हमारे राष्ट्र का वास्तविक-संगठन होसकता है, न हम
स्वतन्त्र ही। यदि, मर-पचकर कुछ सुधार प्राप्त भी कर लिये,
तो वे पहाड़ खोदकर चुहिया निकालने के समान होंगे।

राष्ट्र में, सच्ची-राष्ट्रीयता पैदा करने, देश में परस्पर बन्धुभाव उत्पन्न करने और देशोन्नति के लिये प्राणों की बाज़ी लगानेवाले देशभक्त-वीरों को पैदा करने का केवल एक ही उपाय है और वह यह, कि भारत से धर्म का बोरिया-बिस्तरा सदा के लिये बँध जाय, यानी हमारे देश को एक ढोंग से सदा के लिये छुट्टी मिल जाय!

"मैं, इन सब गिर्जाघरों, मन्दिरों और मसजिदों से सख़्त-नफ़रत करता हूँ। ऐ सत्य की पवित्र-भावना! मनुष्य को मनुष्य से पृथक् करनेवाली इन संकुचित-दीवारों को तू गिरा दे।"

—एक विद्वान्.

धर्म और आर्थिक-जीवन.

भारतवर्ष का आर्थिक-जीवन, संसार के अत्यन्त-ग़रीब देशों की श्रेणी का है। पहले, भारतवर्ष इतना ग़रीब नहीं था, फिर अब इसकी यह स्थिति क्यों होगई? यह एक ज़बर्दस्त-प्रश्न है।

इस प्रश्न के उत्तर में हम कहेंगे, कि धर्म के आधिक्य ने भारतवर्ष को तबाह कर दिया है। हम, धर्म के जो लक्षण पहले बतला चुके हैं, उनमें अकर्मण्यता भी एक है। और इस दुर्गुण को धर्म ने ही जन्म दिया है, यह निश्चित है।

हम देखते हैं, कि अधिकांश-मनुष्य इस बीसवीं-सदी में भी भाग्यवादी यानी तक़दीर के भरोसे रहनेवाले हैं। उनका यह विश्वास है, कि हमारी तक़दीर में जो लिखा होगा, वह होगा, उससे न कम होसकता है, न अधिक। जब किसी भले-आदमी से प्रयत्नशील होने को कहा जाता है, तो वह फ़ौरन ही कहने लगता है—

'होइहि सोइ जो राम रचि राखा,
को करि तर्क बढ़ावै शाखा'।

यानी, हमारी तक़दीर में ईश्वर ने जो पहले से लिख रक्खा है, उसमें तर्क करके घटती-बढ़ती कौन कर सकता है?

जब, भाग्य में परिवर्तन नहीं होसकता, हमारी ग़रीबी दूर नहीं होसकती, हमें धन नहीं मिल सकता, हम उन्नति नहीं

कर सकते, तो फिर उसके लिये प्रयत्न ही क्यों किया जावे? रामजी को जो कुछ देना होगा, छप्पर फाड़कर देंगे ही!

यह अन्धविश्वास, यह भाग्यवाद का ढकोसला कहाँ से आया और कैसे पैदा होगया? पता लगाने पर मालूम होता है, कि धर्म के झूठे-ढोंग के कारण इसकी उत्पत्ति हुई है। पुनर्जन्म, ईश्वर की इच्छा, उसके न्याय और पूर्व-संचित पाप-पुण्य की फल-प्राप्ति पर विश्वास करने के कारण ही लोगों को यह मानना पड़ा, कि भाग्य भी कोई चीज है। यदि, ये सब ढकोसले न होते, तो भाग्यवाद को कभी जन्म ही न मिलता।

वास्तव में; भाग्यवाद कोई चीज है ही नहीं। आर्थिक-उन्नति के लिये, चालाकी और परिस्थिति से लाभ उठाने की योग्यता एवं परिश्रम की अनिवार्य-आवश्यकता है! ये चीजें जिसके पास हैं, उसकी आर्थिक-उन्नति होसकती है, कपाल के भरोसे बैठनेवालों की कदापि नहीं। भारतवर्ष, भाग्य या होनहार के भरोसे बैठा-बैठा ही तबाह होगया और इंग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रांस आदि देश अपने परिश्रम तथा चालाकी से खूब धनी बन गये। तो क्या सब भाग्यवान् अमेरिका में और सभी अभागे इस भारतवर्षरूपी 'धर्मभूमि' में पैदा होते हैं? कदापि नहीं। यदि, भारतीय प्रारम्भ ही से सतर्क रहते और उचित-परिस्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न करते, तो आज वे भी संसार के अन्य देशों की भाँति श्रीमन्त होते। लेकिन, उन्हें तो 'भाग्य' पर भरोसा है, ईश्वर के कर्तृत्व और न्याय पर दृढ़-विश्वास है। ऐसी दशा में, वे परिश्रम करने की मूर्खता क्यों करने लगे? यदि ईश्वर को उन्हें धन देना मंजूर होगा, तो "छप्पर फाड़कर दे देगा"। वाह रे भाग्यवाद! तूने हमारे देश को तबाह कर दिया, माँगने-खाने की नौबत पहुँचा दी।

भाग्यवाद, हमारी नस-नस में घर कर गया है। हमने देखा है, कि जब मज़दूरों से किसी ने कहा, कि यदि वे प्रयत्न करें और द्रव्य-संचय की योग्यता उत्पन्न करें एवं आर्थिक-क्षेत्र में अपने उचित तथा पूर्ण-अधिकार प्राप्त करने का उपाय करें, तो शीघ्र ही उनकी स्थिति सुधर सकती है। इसके उत्तर में, उन्होंने स्पष्ट-शब्दों में कह दिया, कि हमारे भाग्य में जो बदा होगा, उससे अधिक कुछ नहीं मिल सकता। इसलिये किसी प्रयत्न में हमें दिलचस्पी नहीं है।

इससे अधिक अन्धविश्वासपूर्ण-स्थिति और क्या होगी ? अमेरिका के मज़दूर अपने अहर्निशि परिश्रम के कारण संसार में सब से आगे हैं और भारत के मज़दूर भाग्य के नाम सिर पीट रहे हैं। जब, ग़रीब-अमीर सभी भाग्यवादी हैं, तब देश रसातल को नहीं, तो क्या उन्नति की ओर जावेगा ? बलिहारी है भाग्यवाद की।

भारतवर्ष में, जो आर्थिक-असमानता दिखलाई देती है, उसका कारण भी भाग्यवाद ही है। यदि, प्रारम्भ से ही लोगों में यह भावना उत्पन्न होगई होती, कि इस देश के सभी निवासियों का देश की सम्पत्ति पर समान-अधिकार है, तो जिसे अब पूँजीवाद के नाम से पुकारा जाता है, वह धनवाद कभी उत्पन्न ही न होने पाता। लेकिन, जब लोगों को यह बतला दिया गया, कि मनुष्य पूर्वसंचित-पापों या पुण्यों के आधार पर धनी या निर्धन होता है, तो वे बेचारे अपनी प्रत्येक-विपत्ति को, पूर्वसंचित-पापों का फल मानकर खामोश रहे और यदि सार्वजनिक-सम्पत्ति पर किसी ने बलात् अधिकार भी कर लिया, तो लोगों ने इसे उस व्यक्ति की पूर्व-पुण्याई का फल माना तथा इस अत्याचार के विरुद्ध एक-शब्द कहने

का भी साहस न किया। जिन लोगों ने, चालाकी से सम्पत्ति पर क़ब्ज़ा कर लिया था, आगे चलकर उन्हीं के हाथों में सारी शक्तियाँ केन्द्रित होने लगीं और ग़रीबों पर नाना-प्रकार के अत्याचार होने लगे। यहीं से पूँजीवाद का जन्म होता है। तदुपरान्त, इस पूँजीवाद के समय-समय पर अनेक रूप हुए और आज वह कारख़ानेदार और मज़दूर, ज़िमीदार तथा किसान आदि के रूप में दुःखदायी प्रतीत होता है। इस समय जो स्थिति है, उससे भी भयङ्कर-स्थिति आगे होगी, यदि भारतवर्ष से धर्म को बिदा न कर दिया गया और सबलोग भाग्य का भरोसा छोड़कर अपने न्यायोचित-अधिकारों की रक्षा के लिये कटिबद्ध न हुए। अस्तु।

भाग्यवाद के फेर में पड़कर भी भारतवर्ष के ग़रीब-मज़दूरों को जो कुछ मिला, उसके द्वारा अपना जीवन सुधारने के बदले, वे उसे संचित कर-करके रखते एवं परलोक सुधारने की इच्छा से तीर्थ-यात्रा कर डालते हैं। इस तरह, जो कुछ उनके पास होता है, वह रेल के भाड़े, पण्डों की भेंट, मन्दिर की पूजा, तीर्थ पर गौदान आदि के रूप में ख़तम होजाता है। यदि तीर्थ-यात्रा को न गये, तो कोई और धार्मिक-कार्य करके उसे उड़ा देंगे। पेट में चाहे न खावें, परलोक ज़रूर सुधारेंगे। प्रतिवर्ष, लाखों किसान-मज़दूर तीर्थ-यात्रा के ढकोसले में फँस-कर अपनी गाढ़ी-कमाई का धन उड़ा देते हैं। यदि, वे लोग अपनी छोटी-छोटी रक़में इकट्ठी करके प्रत्येक ज़िले में लिमिटेड-कम्पनियाँ क़ायम करें और उनके द्वारा व्यवसाय शुरू करें, तो उनका आर्थिक-जीवन बहुत-कुछ सुधर जाय। लेकिन, फिर धर्म का पालन कैसे हो, यह प्रश्न है न? सचमुच ही तीर्थ-यात्रा ग़रीबों का रक्त सुखानेवाला रोग एवं धर्म उनके प्राणों का

भयङ्कर-शत्रु है। हम, ख़ासतौर पर ग़रीब-आदमियों से अनुरोध करेंगे, कि वे धर्म के झूठे-ढकोसले से बचें। इससे बचने पर ही उनका कल्याण होसकता है !

ग़रीब-आदमियों ने तो इस तरह अपना सर्वस्व खो दिया। शेष रहे अमीर। वे लोग, औचित्यानौचित्य का विचार छोड़-कर जो पाते हैं, उसे यदि अपने खर्च से कुछ बचाकर ग़रीबों की सहायता करने में लगावें, तब भी देश के ग़रीबों का बहुत-कुछ भला होजाय। लेकिन नहीं, उन्हें भी धर्म के मारे फ़ुरसत नहीं है, कि वे ग़रीबों की सुधि ले सकें। यदि वे यह रुपया किसानों तथा मजदूरों की स्थिति सुधारने में ख़र्च कर देंगे, तो फिर तीर्थस्थानों पर ये बड़े-बड़े अन्नक्षेत्र खोलकर, साधु नामधारी मुफ़्तखोरों का पालन कौन करेगा ? लाखों-रुपये ख़र्च करके बड़े-बड़े मन्दिर कौन बनवावेगा ? ठाकुरजी के लिये लाखों के ज़ेवर तथा हज़ारों-रुपये प्रतिवर्ष के मोहन-भोग का इन्तिज़ाम कौन करेगा ?

मतलब यह, कि धनियों के पास जो पैसा बढ़ता है, वह भी धर्म के झूठे-ढकोसले की अग्नि में फूँक दिया जाता है। पहले तो धर्म की अधिकता के कारण भारतवर्ष में धन रखने को जगह ही न रही, अतः वह विदेशों को भेज दिया गया। जो शेष रहा, उसे अमीर और ग़रीब सबने मिलकर दोनों-हाथों से धर्म की वेदी पर भेंट कर दिया। अब, व्यवसाय पूँजी के बिना बढ़े कैसे और जबतक व्यवसाय की वृद्धि न हो, तबतक देश की आर्थिक-स्थिति कैसे सुधरे ? हमलोगों के पास धन तो रहा नहीं, जिससे धन पैदा हो या हम बाज़ारों को बचाने में समर्थ हों। भाग्यवाद ने हमारा साहस चबा लिया, परिश्रम-शीलता को नष्ट कर दिया। धन, परिश्रम और साहस तीनों

गये, अब धर्म बाक़ी है। इसलिये धर्म को शहद लगाकर चाटने के सिवा अब और कोई उपाय ही नहीं दीख पड़ता।

कैसा भयङ्कर-अज्ञान है! इस धर्म के झूठे-पचड़े में फँसकर हमारी आर्थिक-स्थिति कैसी ख़राब होगई! हम तबाह होगये! जिस तरह धर्म ने अन्यान्य-क्षेत्रों में हमारा सर्वनाश किया, उसी तरह आर्थिक-क्षेत्र में भी इसने हमें मिट्टी में मिला दिया! अब भी यदि हम देश की आर्थिक-अवस्था सुधारना चाहते हों, तो हमें यथासम्भव-शीघ्र इस धर्म के झूटे-ढकोसले को अपने देश से सदा के लिये विदा कर देना चाहिये! इसका और कोई उपाय ही नहीं है।

"इन धर्माचार्यों ने, समय-समय पर राजकीय किंवा आर्थिक-शक्तियों से षड्यन्त्र करके वह भयङ्कर आर्थिक-दुर्व्यवस्था फैलश दी है, जिसका सुधार, इनकी शक्ति और इनके ढोंग के प्रभाव का नाश हुए बिना कभी नहीं होसकता।"

—लेखक.

तीसरा-अध्याय

जो लोग यह बकते घूमते हैं, कि धर्म का नाश होते ही मनुष्य, मनुष्य के प्राणों का ग्राहक होजावेगा, वे पागल हैं। धर्म की इतनी अधिकता होते हुए भी, लोग नीति का नाश करने से नहीं चूकते। कारण, कि धर्म, नीति से सम्बन्धित ही नहीं है। जो यत्किञ्चित-व्यवस्था दिखलाई देती है, वह क़ानूनी है, धार्मिक नहीं। धर्म के नष्ट होजाने पर भी जो लोग नीतिमान् हैं, वे अपनी नीति के लिये और जो लोग नीति को अधिक महत्व नहीं देते, वे क़ानून के दबाव से आज की ही तरह रहेंगे। किन्तु, यदि शासन-व्यवस्था का भय न रहे और धर्म ही धर्म का प्रचार रहे, तो प्रत्यक्ष ही एक-मनुष्य, दूसरे-मनुष्य के रक्त का प्यासा होजाय। यदि, धर्म से नीति की रक्षा होसकती, तो भारतवर्ष जैसे महाधर्मात्मा-देश में कभी अनीति तो सुनाई ही न देती। इसके विरुद्ध, प्रतिदिन जो अनैतिकता सुनी जाती है, वह धर्म की अनुपयोगिता का सबसे बड़ा प्रमाण है !

धर्म के बिना क्या होगा ?

बहुत-से लोग यह सुनकर, कि—"धर्म केवल एक ढोंग है और अब संसार को उसकी आवश्यकता नहीं रही" हँसते हुए पूछने लगते हैं, कि धर्म को देश से विदा करके क्या अधर्म का प्रचार करना चाहते हो ? उनकी दृष्टि में, इतने कटु-अनुभवों के पश्चात् भी धर्म का अर्थ सदाचार ही है। लेकिन, हम पहले यह बतला आये हैं, कि धर्म का वास्तविक-अर्थ दुर्गुणों का समूह है, सदाचार तो उसका किताबी-अर्थ है। हजारों-वर्षों के इतिहास से पता लगता है, कि धर्म का फल सदैव बुराई ही हुआ है। ऐसी दशा में, यदि हम छाती ठोककर यह कहें, कि हम देश में 'अधर्म' का प्रचार करना चाहते हैं, तो क्या बुराई है ? अधर्म का अर्थ दुराचार नहीं, सदाचार है; कारण कि धर्म का रूढ़-अर्थ, भयङ्कर-दुराचार है! इतनी भयङ्कर-वस्तु की संसार को अब क्या आवश्यकता है ? जिस वस्तु ने, हमें मनुष्य से गिराकर पशु बना दिया, जिसने हमारा सर्वस्व नष्ट कर दिया, जो धर्म हमें दिन-दिन पतन की ओर ले जारहा है, उसी धर्म को शब्दाडम्बर के सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनाकर यदि हम जीवित रखने का प्रयत्न करें, तो हमसे बढ़कर अज्ञानी और कौन होगा ?

धर्म के नाश का नाम सुनकर बहुत-से लोग घबरा उठते हैं। वे कहने लगते हैं, कि जब संसार में धर्म न रहेगा, तो नीति की रक्षा कैसे होगी ? इसके उत्तर में हम कहेंगे, कि धर्म ने सदैव नीति के नाश में सहायता पहुँचाई है, उसकी

रक्षा में कभी नहीं। धर्म के नाम पर, संसार में सदैव ही पशुता का नंगा-नाच होता रहा है। आज भी हम देखते हैं, कि धर्म ही के नाम पर बड़े-बड़े साम्प्रदायिक-दंगे होते हैं। धर्म ही की ओट में पण्डे-पुजारी एवं महन्तलोग मौज उड़ाते हैं। धर्म ही की वृद्धि के लिये स्त्री तथा बच्चे भगाये जाते और मनुष्य, मनुष्य के खून का प्यासा भी धर्म ही की रक्षा के लिये होजाता है। यदि, धर्म नामक बवाल हमारे देश से सदा के लिये दूर होजाय, तो ये बड़े-बड़े अनैतिकतापूर्ण-कृत्य सदा के लिये यहाँ से विदा होजायँ। जो धर्म, उपरोक्त प्रकार की पाशविक-वृत्तियों को जन्म देकर उनकी रक्षा कर सकता है, उसे नीति की रक्षा करनेवाला मानना, प्रत्यक्ष ही अज्ञान है। यह समझना, कि धर्म के न रहने पर नीति न रहेगी, बड़ी भयङ्कर-भूल है। कारण, कि धर्म यदि प्रत्यक्ष ही नीति का विरोध नहीं करता, तो कम-से-कम उसकी उपेक्षा तो अवश्य ही करता है, यह बात हम पहले बतला चुके हैं।

यदि, धर्म से सदाचार तथा शान्ति की उत्पत्ति होसकती, तो वड़े-वड़े धर्मात्मा-महन्तलोग दुराचारी क्यों होते? बड़े-बड़े तिलकवाले रण्डीबाज़ी क्यों करते? मौलवीलोगों में से फिर तो कोई भी हुस्नपरस्त न होता! लेकिन नहीं, यह तो कभी होता ही नहीं। यदि, क़ानून का जबर्दस्त-पंजा खोपड़ी पर न होता, तो ये बड़े-बड़े धर्माचार्य, सबसे पहले बदमाशों का गिरोह बनाकर लोगों की सुन्दर-सुन्दर बहिन-बेटियों को पकड़ लाते, जैसा कि इस वक्त भी क़ानून की दृष्टि बचाकर करते हैं! जब, धर्म का उपदेश देनेवाले स्वयं ही अनीति करते हैं, तो जन-साधारण पर धर्म का क्या खाक प्रभाव पड़ेगा?

जो लोग, धर्म के भय से नीति का पालन करवाना चाहते हैं, वे नीति का महत्व ही नहीं जानते। नीति तो स्वयं ही नीति है, धर्म तो उसके हजारवें-अंश के बराबर भी अच्छा नहीं होसकता! जो लोग नीतिज्ञ हैं, वे नीति के लिये ही नीति का पालन करते हैं, धर्म के लिये नहीं। धर्म के लिये संसार में कोई नीति नहीं पालता। यदि कोई पालता भी है, तो उसकी वही दशा है, जो किसी बदचलन-औरत की—जो पति के डंडे के भय से बदमाशी नहीं करती—होसकती है। ऐसी स्त्री, जब भी पति का अत्यन्त-परोक्ष पावेगी, तभी बदचलनी करेगी! ठीक इसी तरह, जो लोग धर्म के लिये नीति पालते हैं, वे जब यह जानेंगे, कि धर्म कोई वस्तु नहीं है, तभी नीति को छोड़ बैठेंगे! इसके विरुद्ध, जो लोग नीति को मानव-जीवन के लिये आवश्यक तथा मानव-समाज का आधार मानते हैं, वे धर्म का अस्तित्व रहे या न रहे, नीति का पालन तो करेंगे ही! यदि, धर्म ही के कारण नीति की रक्षा होना सम्भव होता, तो सभी नास्तिकों में नीति का अभाव होना चाहिये, क्योंकि वे धर्म को मजाक़ की वस्तु मानते हैं। लेकिन, यह बात नहीं है। इस विषय में, हम स्वयं अपनी तरफ़ से कुछ न लिखकर, संसार के सुप्रसिद्ध-बुद्धिमान् महात्मा-टॉल्स्टॉय का कथन उद्धृत करते हैं—

"इस समय के समान उस समय भी धर्म मुख्यतः उन लोगों के व्यवसाय एवं विश्वास का विषय था, जो कि आलसी एवं अत्याचारी थे और अपने को बहुत-अधिक महत्व देते थे। योग्यता, ईमानदारी, नेकनीयती और सच्चरित्रता आदि सद्गुण अधिकांश में नास्तिकलोगों में ही पाये जाते थे।"

महात्मा टॉल्स्टॉय केइस कथन में, उनके तत्कालीन एवं पूर्व-काल के समाज में धार्मिकलोगों की जो स्थिति थी और नास्तिक-

लोग जिस तरह नीति की मर्यादा का पालन करते थे—दोनों का, अत्यन्त-स्पष्ट वर्णन है ! जब, नास्तिकलोग नीति का पालन करनेवाले होते हैं और वे सामाजिक-व्यवस्था के लिये प्रत्येक-व्यक्ति के आचरण को जिम्मेदार मानते हैं, तो कौन बुद्धिमान् कह सकता है, कि जहाँ धर्म नहीं है, वहाँ नीति का अभाव होता है ?

सारांश यह, कि धर्म, सदैव नीति का विरोधी रहा है। उसके कारण, संसार में कभी शान्ति नहीं स्थापित होने पाई। क्योंकि, धर्म यह नहीं मानता, कि सांसारिक-व्यवस्था में मनुष्य का कोई हाथ होसकता है। वह तो यह जानता है, कि जो ईश्वर करेगा, सो होगा। ऐसी दशा में, एक व्यक्ति इस बात को क्यों मानने लगा, कि मेरे बुरे-आचरणों का समाज पर कोई बुरा-प्रभाव पड़ सकता है ? जब, वह अपने आचरण से समाज में कोई बुराई फैलना नहीं मानता, तब नीति के पालन की आवश्यकता ही क्या है ? आस्तिकलोग, सदैव परलोक के लिये नीति मानते हैं। वे समझते हैं, कि जो जैसा करेगा, सो तैसा पावेगा। चोर चोरी करेगा, तो नर्क जावेगा; बदमाश, बदमाशी करेगा, तो लोहखम्भ से चिपकाया जावेगा ! उन्हें, इन लोगों के परलोक का ख़याल है, इस लोक में समाज की इनके द्वारा होनेवाली हानि की चिन्ता नहीं।

इसके विरुद्ध, एक नास्तिक मानता है, कि समाज के प्रत्येक-व्यक्ति पर सारे समाज की व्यवस्था का भार है। वह, सामाजिक-जीवन के सुचारु-रूप से चलने का भार प्रत्येक-व्यक्ति पर मानता है, इसीलिये वह प्रत्येक-व्यक्ति की समाज के प्रति, उतनी ही जिम्मेदारी मानता है, जितनी

आस्तिकों की दृष्टि में 'विष्णु' यानी 'पालक' पर है ! यही ज़िम्मेदारी अनीश्वरवादियों को सन्मार्ग पर चलाती है, जिसकी ओर महात्मा टॉल्स्टॉय ने संकेत किया है।

जब, धर्मात्मालोग अव्वल-दर्जे के स्वार्थी होते हैं और नास्तिकलोग नीति के पालक, तो यह कहना कहाँ की बुद्धिमानी है, कि धर्म के अभाव में नीति का नाश होजावेगा ?

जो लोग यह बकते घूमते हैं, कि धर्म का नाश होते ही मनुष्य, मनुष्य के प्राणों का ग्राहक होजावेगा, वे पागल हैं। धर्म की इतनी अधिकता होते हुए भी लोग नीति का नाश करने से नहीं चूकते। कारण, कि धर्म नीति से सम्बन्धित ही नहीं है। जो यत्किञ्चित-व्यवस्था दिखलाई देती है, वह क़ानूनी है, धार्मिक नहीं। धर्म के नष्ट होजाने पर भी जो लोग नीतिमान् हैं, वे अपनी नीति के लिये और जो लोग नीति को अधिक महत्व नहीं देते, वे क़ानून के दबाव से आज की ही तरह रहेंगे। किन्तु, यदि शासन-व्यवस्था का भय न रहे और धर्म ही धर्म का प्रचार रहे, तो प्रत्यक्ष ही एक-मनुष्य, दूसरे-मनुष्य के रक्त का प्यासा होजाय। यदि, धर्म से नीति की रक्षा होसकती, तो भारतवर्ष जैसे महा-धर्मात्मा-देश में कभी अनीति तो सुनाई ही न देती। इसके विरुद्ध, प्रतिदिन जो अनैतिकता सुनी जाती है, वह धर्म की अनुपयोगिता का सबसे बड़ा प्रमाण है !

सारांश यह, कि यदि भारतवर्ष से धर्म नामक ढोंग बिदा होजाय, तो वर्तमानकाल में उसकी जो स्थिति है, उससे कहीं अच्छीस्थिति होजाय। उस समय, लोग अकर्मण्यता छोड़ देंगे, ईश्वर का भरोसा तथा पूर्व-कर्मों का विश्वास नष्ट होजावेगा, प्रत्येक-व्यक्ति अपनी-अपनी ज़िम्मेदारी समझने लगेगा, बन्धुत्व की

भावना उत्पन्न होजावेगी तथा लोगों में अपने देश से अविद्या एवं अज्ञान को विदा करने के विचार ज़ोर पकड़ेंगे। ऐसी स्थिति में, हमारे देश की उन्नति क्यों न होगी ? निश्चय ही, जबतक यह धर्म नामक ढोंग दूर नहीं होता, तबतक भारतवर्ष से हज़ारों-दुर्गुण दूर नहीं होसकते। जिस दिन इस सर्वनाशकारी-भावना का लोप होजावेगा, उसी दिन हमारे देश में उन्नति का प्रादुर्भाव होगा। हम, डंके की चोट पर यह बात कहेंगे, कि धर्म की विदाई ही उन्नति का मूल है ! धर्म के अभाव में अव्यवस्था की कल्पना, अज्ञानियों के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता ।

"मैं, किसी भी धर्म को नहीं मानता और कभी कभी तो मैं यह चाहता हूँ, कि सभी धर्मों को समुद्र की तह में डुबो दिया जाय" ।

—ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमालपाशा.

ईश्वर-विरोधी संघ !

इस संघ का उद्देश्य, संसार में प्रचलित समस्त पारलौकिक-ढोंगों का विरोध करना तथा लोगों को सदाचारपूर्ण-जीवन व्यतीत करते हुए वास्तविक (सांसारिक) उन्नति करने को उत्साहित करना है ।

प्रत्येक ऐसा दृढ़ और सभ्य-व्यक्ति इस संघ का सदस्य होसकता है, जो मजबूती के साथ सब ढोंगों का विरोध कर सकता हो । फिर वह स्त्री हो या पुरुष, देशी हो या विदेशी । धर्म, मजहब या संस्कृति का भी कोई भेद नहीं माना जावेगा ।

यह, शुद्ध सामाजिक-संस्था है, राजनीति से इसका कोई सम्बन्ध न होगा, इसलिये सभी श्रेणी के मनुष्य, निःसंकोचभाव से इसके सदस्य होसकते हैं ।

इसके सदस्य होनेवाले सज्जन को कोई चन्दा या फ़ीस न देनी होगी । केवल एक पत्र लिखकर इस संघ के सभ्य बन सकते हैं ।

संघ का सम्यक्प्रकारेण-संगठन होजाने पर कार्य करने की प्रणाली निश्चित की जावेगी और उस समय इन नियमों में परिवर्तन भी किया जासकेगा । आज ही पत्र लिखिये ।

Shree Bhajami Shanker Dixit.
V. Bichhalkha
P. Ramnagar
Dt.—Barabanki U. P.

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित.
मु० बिछलखा, पो० रामनगर.
जिला—बाराबङ्की (यू० पी०)

आवश्यक-सूचना!

जिन सज्जनों को, इस पुस्तक या इसके सिद्धान्तों के विषय में कुछ सन्देह या शंका हो, वे पत्र-द्वारा हमसे पूछ सकते हैं। पत्र, संक्षिप्त होना चाहिये और उत्तर के लिये टिकिट लगा लिफ़ाफ़ा आना आवश्यक है।

Shree Bhajami Shanker Dixit,
V. Bichhalkha,
P. Ramnagar.
Dt. Barabanki, U. P.

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित,
मु० बिछलखा,
पो० रामनगर, ज़ि० बाराबङ्की
यू० पी०